छत्रपति शिवाजी

शिवाजी महाराज

प्रकाश पुस्तकालय, कानपुर ।

प्रकाश-पुस्तक-माला

छत्रपति शिवाजी

(सचित्र जीवन चरित्र)

लेखक
पं० माता सेवक पाठक

प्रकाशक
वैद्य शिवनारायण मिश्र, भिषग्रत्न
प्रकाश पुस्तकालय,
तथा
प्रकाश आयुर्वेदीय औषधालय
कानपुर.

प्रथम संस्करण] [मूल्य १० आने

वैद्य शिवनारायण मिश्र भिषग्रत्न द्वारा
प्रकाश औषधालय के प्रकाश आयुर्वेदीय प्रिंटिंग प्रेस कानपुर में
मुद्रित और प्रकाशित.

११—१९२९—१

भेंट

भूमिका
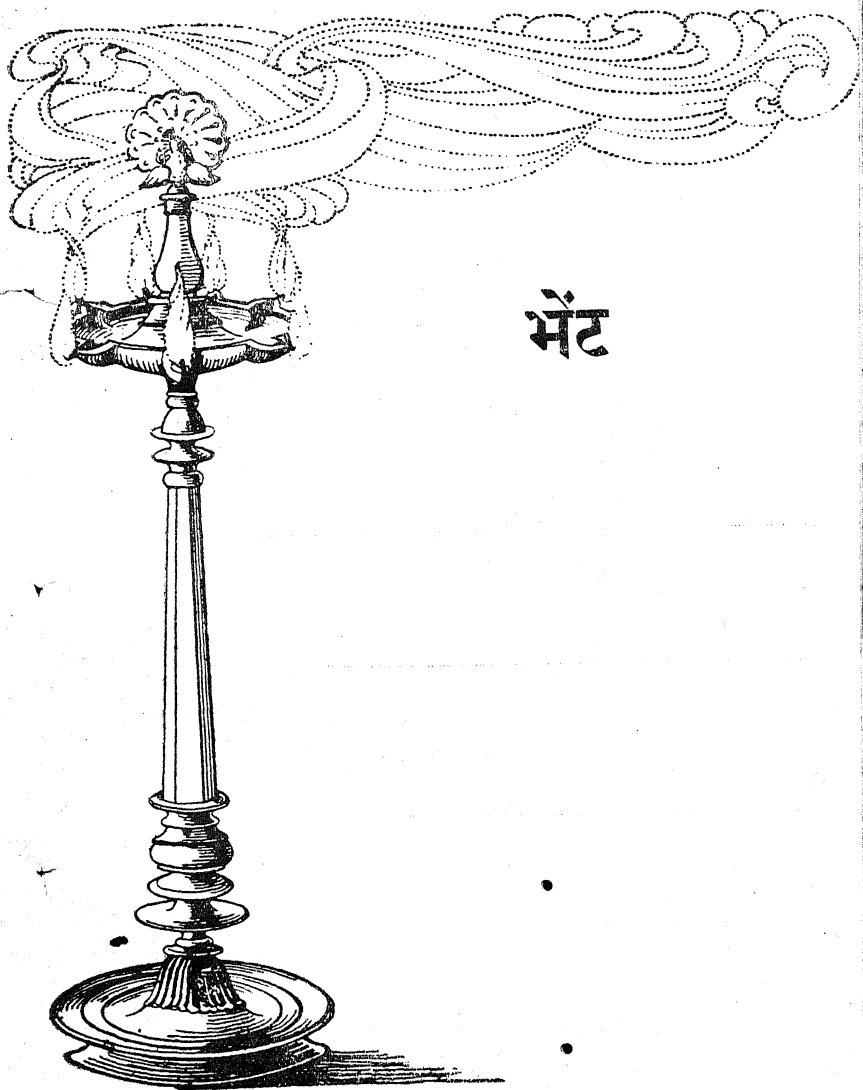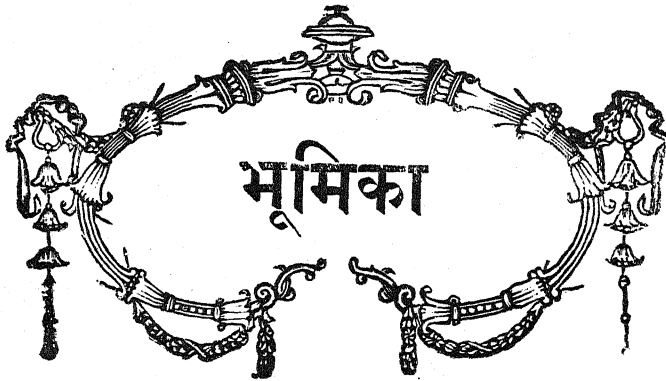
छत्रपति शिवाजी हिन्दू-जाति के रक्षक, वीर, तपस्वी और गोब्राह्मण प्रतिपालक थे। उनकी वीरता ने मयूर सिंहासन के अधिपति तक को कँपा दिया था। उदारता की तो वे मूर्ति थे, यहां तक कि एक बार उन्होंने अपना सम्पूर्ण राज्य अपने गुरु समर्थ रामदास के चरणों में दान कर दिया था, किन्तु गुरु ने उन्हीं को अपना प्रतिनिधि बनाकर राज्य सौंप दिया था। शिवाजी मरते दम तक भरत सदृश पवित्र थाती की तरह राज्य की रक्षा करते रहे। सच्चरित्रता के प्रमाण स्वरूप उनके जीवन की वे घटनायें हैं जिन्हें उनके दुश्मन मुसलमान इतिहासकार तक लिख कर प्रशंसा कर गये हैं। ऐसे महान् पुरुष के जीवन-चरित्र का अनुसरण भारत के प्रत्येक बालक, वृद्ध, युवा देशभक्त को करना चाहिए। एवमस्तु।

प्रकाशक

जल चिकित्सा अर्थात पानी का इलाज

लेखक—शिवनारायण टण्डन.

इसमें पुरुषों के खास खास सब रोगों का इलाज, स्त्री रोगों को जड़मूल से नाश करने की विधि और बच्चों के स्वास्थ्य का बीमा है। क्षय का शर्तिया इलाज, संग्रहणी को रामबाण औषधि, स्वप्नदोष और सब प्रकार के वीर्य सम्बन्धी रोगों को जड़मूल से नाश करने की विधि तथा सब प्रकार के ज्वरों और चेचक वगैरह के लिए लाभप्रद चिकित्सा का वर्णन सरल और सुबोध भाषा में है। पहला संस्करण तीन महीने के भीतर हाथोंहाथ बिक चुका है। दूसरा संशोधित और परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुआ है। दो चित्र, ७० पृष्ठ, छपाई, काग़ज़ सब उत्तम। मूल्य ६ आने।

लेखक—वैद्य शिवनारायण मिश्र भिषग्रत्न.

जल के प्रयोगों को करके रोगी मनुष्य कैसे तन्दुरुस्त हो सकता और तन्दुरुस्त अपने स्वास्थ्य को कायम रख सकता है, इसका विवेचन बड़े सरल ढंग से किया गया है। जुकाम, बद-हजमी, कब्जियत, खांसी, सरदर्द, बवासीर, श्वास, राजयक्ष्मा, स्वप्नदोष, बुखार, हैजा आदि विभिन्न रोगों पर जल चिकित्सा का कैसा आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है इसका उल्लेख भी किया गया है। ८ चित्र, ८४ पृष्ठ, छपाई, काग़ज़ उत्तम। मूल्य ८ आने

हिन्दू जाति की प्राचीनता	१	से	४
हिन्दूजाति को अयोग्य बताने का उद्देश्य ...	४	"	८
हिन्दुओं को अयोग्य बताने के दो कारण ...	८	"	९
हिन्दुओं की योग्यता	९	"	१२
मुसलमानों का आधिपत्य	१२	"	१४
हिन्दुओं की धर्म-रक्षा	१५	"	१६
शिवाजी के समय का भारत	१६	"	१८
वंश-परिचय	१८	"	२६
शिवाजी का शैशवकाल	२६	"	४०
शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा	४०	"	४५
शिवाजी का हिन्दू-संगठन	४५	"	४८
क्या शिवाजी डाकू थे ?	४८	"	५२
कार्यक्षेत्र में पदार्पण	५२	"	५३
तोरण दुर्ग पर अधिकार	५३	"	५७
किलों पर अधिकार	५७	"	६१
बीजापुर से खटपट	६१	"	६३
शाहजी की गिरफ्तारी और क़ैद	६४	"	६८
शिवाजी को पकड़ने का निष्फल प्रयत्न ...	६८	"	७४
औरङ्गजेब की राक्षसी चाल	७४	"	७७
मुगल राज्य पर आक्रमण और सन्धि ...	७७	"	८१
अफजल खाँ का बध	८१	"	९०

बीजापुर से संग्राम और सन्धि ... पृष्ठ ९१ से ९४
मुगलों की हार ... ... ९५ " ९७
सूरत की लूट ... ... ९७ " ९८
मुगलों का दूसरा हमला और सन्धि ... ९८ " १००
शिवाजी की दिल्ली-यात्रा ... ... १०० " १०६
सिंहगढ़ विजय ... ... १०६ " १०९
शिवाजी का राज्याभिषेक ... ... १०९ " ११०
अन्तिम दिन ... ... ११० " ११२
मृत्यु ... ... ११२ " ११२
शासन व्यवस्था ... ... ११२ " ११७
शिवाजी का चरित्र ... ... ११७ " ११८

---

(१) छत्रपति शिवाजी (बहुवर्ण) मुखपृष्ठ
(२) शिवाजी का अङ्गभूत भारत पृष्ठ १ के सामने
(३) वीर शिवाजी की मूर्ति ४१ "
(४) सूरत की लूट ९७ "
(५) औरङ्गजेब के दर्बार में शिवाजी १०२ "
(६) शिवाजी और किलेदार की कन्या ११७ "

शिवाजी का अद्भुत भारत।

छत्रपति शिवाजी

हिन्दू जाति की प्राचीनता

जिस आर्य जाति का नाम सैकड़ों वर्षों से हिन्दू जाति पड़ा है, यह संसार की अन्य सभी जातियों से प्राचीन है। आर्य या हिन्दू सभ्यता की प्राचीनता अब आज की सभ्य बनने वाली सभ्य ज़ातियां भी स्वीकार कर रही हैं। जिस जाति के सवस्व वेद आज भी अनादि परमात्मा के ज्ञान और अपौरुषेय माने जाते हैं और कट्टर से कट्टर हिन्दू-विरोधी भी जिन ऋग्वेदादि को भूमंडल के पुस्तकालय के आदि ग्रंथ स्वीकार कर रहे हैं, उस जाति की प्राचीनता और उसकी सभ्यता के विषय में किसे सन्देह हो सकता है? हिन्दू जाति के पास जब तक ऋग्वेद, सामबेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद तथा उनके उपवेद विद्यमान रहेंगे, जब तक कपिल का सांख्य-दर्शन, पतंजलि का योग-दर्शन, गौतम कृत न्याय-दर्शन, कणादि का वैशेषिक-दर्शन, जैमिनि का पूर्व-मीमांसा और व्यास कृत उत्तर-मीमांसा या वेदान्त हिन्दू जाति के अपूर्व पुस्तकालय में उपस्थित रहेंगे, तब तक इस जाति की प्राचीनता के साथ ही इसके ज्ञान और सभ्यता की प्राचीनता अक्षुण्ण बनी रहेगी। भला भूमंडल पर ऐसी कौन सी दूसरी जाति है जो अपने पास हमारी मनुस्मृति जैसा धर्म या कानून का पूर्ण ग्रंथ दिखा सकती है?

ऐसी दूसरी जाति कौन सी है जिसकी भाषा हिन्दू जाति की संस्कृत जैसी परिष्कृत और सर्वाङ्ग सम्पन्न हो ? पाणिनि के अष्टाध्यायी का सा पूर्ण व्याकरण अन्य किस जाति की भाषा का है ? रामायण और महाभारत जैसे इतिहास-ग्रंथ अन्य किस जाति के पास मिल सकते हैं ? इनके अतिरिक्त अन्य विद्याओं और कलाओं से हिन्दू जाति का भाषा-भंडार उस समय के बहुत पहिले से परिपूर्ण है जब आज की सभ्य बनने वाली जातियां वनों और पर्वतों में भटकती और पशु-जीवन बिताती फिरती थीं।

परन्तु जहां हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की प्राचीनता सभी को स्वीकार करनी पड़ती है, वहां इसकी शासन-योग्यता आजकल की शासक जातियों को स्वीकार नहीं। वर्त्तमान शासन के भीतर जो इतिहास की पुस्तकें हमारे देश की पाठ-शालाओं में पढ़ाई जाती हैं उन सब में यही दिखाया जाता है कि भारतवासी हिन्दू सदा आपस में लड़ते भिड़ते रहते थे और उनमें कभी साम्राज्य-स्थापन की योग्यता नहीं थी। हिन्दू जाति की वर्णव्यवस्था को अनैक्य का बीज बोनेवाली बता कर विदेशी शिक्षक हमारे बालकों के मस्तिष्क में सदा यह भाव भर देने की चेष्टा किया करते हैं कि ब्राह्मणों ने ब्राह्मणेतर और खास कर शूद्र जातियों के ऊपर सदा से घोर अत्याचार किये हैं जिससे हिन्दू जाति को अपना साम्राज्य स्थापित करने में कभी सफलता नहीं मिली थी। परन्तु दूसरी ओर हमारा हिन्दू-साहित्य इस बात के प्रमाणों से परिपूर्ण है कि आदि से लेकर महाभारत युद्ध पर्यन्त भूमंडल पर आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था और मनुस्मृति के अनुसार—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

अ० २।२०

इस आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से भूमण्डल भर के मनुष्य अपने अपने कर्त्तव्य की शिक्षा ग्रहण करते थे। महाभारत के युद्ध में भूमंडल के अनेक देशों के राजा सम्मिलित हुए थे जिससे निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि भारत के चक्रवर्ती राजाओं का साम्राज्य भारत के बाहर चीन, पाताल (अमेरिका), यूरोप आदि तक फैला हुआ था। हिन्दू जाति के वर्णभेद के आधार पर हिन्दू जाति में सदा से अनैक्य और फूट बनी रहने की बात करना हिन्दू जाति के आदर्श और इतिहास से अपनी अनभिज्ञता प्रकट कहना है। समाज के सकल कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के अभिप्राय से ही मनुष्यमात्र चार वर्णों में बांटे गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चारों वर्ण उतने ही प्राचीन हैं जितनी प्राचीन हिन्दू जाति और इसकी सभ्यता है। हमारे अपौरुषेय वेदों में यह वर्णव्यवस्था विद्यमान है। परन्तु यह वर्णव्यवस्था मनुष्य जाति के कल्याण के लिए थी, परस्पर ऊँच नीच का भाव फैलाने या छोटे बड़े के विचार से नहीं। इसीलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों ही वर्ण एक ही विराट् परमात्मा के अंग बताये गये हैं। ब्राह्मण को विराट् परमात्मा का मुख, क्षत्रिय को बाहु, वैश्य को ऊरु या जंघा और शूद्र को पग बता वर्णव्यवस्था की गई है जिसमें इसके कारण मनुष्यों में अनुचित जातिभेद न पैदा हो। जिस प्रकार मुख, बाहु, ऊरु और पग में कोई किसी से बड़ा या अधिक महत्व का नहीं

सिद्ध किया जा सकता और न कोई किसी से हीन ही ठहराया जा सकता है, उसी प्रकार हिन्दू जाति की वर्णव्यवस्था की भी अवस्था है। इसके अनुसार चारों वर्णों को अपने अपने कर्त्तव्यों के पालन में श्रेष्ठता प्रदान करते हुए भी वे सब एक ही विराट् के अंग ठहराये गये हैं। अनेकता में एकता का ऐसा सुन्दर भाव दूसरी जाति की व्यवस्था के भीतर और कहां है? जब तक हिन्दू जाति के बने हुए दिन थे तब तक इस वर्ण-व्यवस्था की मर्य्यादा भी स्थिर थी और इसके उद्देश्य के विपरीत कोई कार्य नहीं होता था। किन्तु हिन्दू जाति के पतन के साथ ही यह व्यवस्था भी स्वरूप-भ्रष्ट हो चली और चार वर्णों के स्थान में आज इसी हिन्दू जाति के भीतर अगणित जातियां और उपजातियां बन गई हैं जो निस्सन्देह जाति के शरीर को, अनैक्य और फूट के कारण, जर्जर बना रही हैं। परन्तु वर्त्तमान जातिभेद को हमारी उच्चतम वर्णव्यवस्था के सिर मढ़ना केवल उन्हीं को शोभा दे सकता है जो हमारे कोमल-मति बालकों के मस्तिष्क में यह बात सदा के लिए भर देना चाहते हैं कि हमारे पूर्वज ऐसे जंगली और गँवार थे कि मनुष्य जाति के भीतर ऊँच नीच का भाव पैदा कर सदा आपस में लड़ते ही भिड़ते रहते थे और इसी से वे स्वराज्य करने तथा साम्राज्य स्थापन करने के योग्य कभी नहीं हो सके थे।

हिन्दू जाति को अयोग्य बताने का उद्देश्य?

एक जाति पर दूसरी जाति का या एक देश पर दूसरे देश का शासन करना अस्वाभाविक है। परन्तु जब दैव

संयोग से किसी जाति या देश पर दूसरी जाति या देश का राज्य हो जाता है तब शासकों का उद्देश्य सदा यही रहता है कि वह जाति या देश अनन्तकाल तक हमारी अधीनता में बना रहे। इसी निकृष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए शासक लोग सभी प्रकार के निन्दित कर्म करने को सदा तैयार रहते हैं। जब से हिन्दू जाति पराधीनता में पड़ी है तभी से इसके शासकों की ओर से ऐसे निन्दित कर्म बराबर होते आ रहे हैं। जब मुसलमानों ने इसके ऊपर अपना शासन जमाया था, तब उन्होंने इसे हेय ठहराने के लिए सब प्रकार के उपायों से काम लिया था। यहां तक कि मुसलमानी शासन काल में और मसलमानी शासन के पहिले भी मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा ऐसी जघन्य काररवाई की गई कि अनेक हिन्दू पुस्तकालय जला डाले गये और हिन्दुओं के कितने ही ग्रन्थरत्न सदा के लिए लुप्त हो गये। जब तक मुसलमान शासकों की चली तब तक उन्होंने हिन्दुओं और उनके देश हिन्दुस्थान को सदा अपनी अधीनता में बनाये रखने के लिए सब प्रकार से यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि एकमात्र इस्लाम धर्म और मुसलमानी सभ्यता ही सर्वोपरि है और हिन्दू जाति अपनी धार्मिक और जातीय अयोग्यताओं के कारण ही पराधीनता के पाश से बंधी है। उनके बाद यूरोपियनों की बारी आई और मुसलमानों से भारत का शासन किसी न किसी तरह अपने हाथ में लेकर अब हमारे ये शिक्षक हमारे बालकों और पश्चिमीय शिक्षा-दीक्षा-प्राप्त युवकों को यह विश्वास करा देने की सतत चेष्टा करते रहते हैं कि हिन्दू जाति में न कभी एकता थी और न आगे ही उसका होना सम्भव है। साथ ही इन

महाप्रभुओं की ओर से बराबर यह भी दर्शाने की चेष्टाएँ होती रहती हैं कि स्वयं परमात्मा ने ही भारत के कल्याण के हेतु अंग्रेज़ों के हाथ में भारत की शासन व्यवस्था सौंप रखी है जिसे ये अंग्रेज़ यदि अपने हाथ से निकाल भारतीयों को सौंप दें तो वह परमात्मा के सौंपे हुए काम को छोड़ना होगा और जिस दिन भारत का राज्य भारतीयों को सौंप अंग्रेज़ चले जायेंगे उसी दिन भारत में लूट मार और हत्या की भरमार होने से भारत गारत हो जायगा। भारतवासी इस समय तो स्वराज्य के अयोग्य हैं ही, साथ ही इन अंग्रेज़ महाप्रभुओं का यह भी कहना है कि इनके पुरखा भी कभी इसके योग्य नहीं थे। हमारे इन महाप्रभुओं की ऐसी सारहीन बातों का समर्थन करने वाले हमारे न जाने कितने ही देशभाई भी हैं जो 'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त' की कहावत चरितार्थ करने में किसी क्षण पीछे नहीं रहना चाहते। कितने ही अंग्रेज़ लार्ड तो किसी दर्जे तक स्वीकार करते हैं कि भारतवासी स्वराज्य के बहुत कुछ योग्य हो चले हैं। किन्तु एक हिन्दुस्थानी लार्ड सिंह महाशय डंके की चोट यह कह देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि अगर अंग्रेज़ इसी वक्त स्वराज्य देने को तैयार भी हो जायं तो भी भारतवासी अयोग्य होने के कारण उसे स्वीकार नहीं कर सकते। यह कोई विचित्र बात नहीं है। अंग्रेज़ महाप्रभुओं की कृपा-कटाक्ष के कारण वर्त्तमान काल में तो भारतवासी तलवार चलाने की कौन कहे उसके नाम से भी काँप उठते हैं। अगर इन महाप्रभुओं ने दो सौ वर्ष के शासन में भारतीयों को कुछ सिखा पाया है तो यही कि अंग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त बाबू लोग वाग्युद्ध में बहुत कुछ योग्यता प्राप्त कर चुके हैं। कोरे बाबू

भी वाग्युद्ध खूब सफलता से कर सकते हैं किन्तु जिनके ऊपर महाप्रभुओं ने थोड़ी सी कृपा और भी कर दी और कोई सरकारी पद सौंप दिया वे तो फिर सदा के लिए इन महाप्रभुओं के बे-दाम कौड़ी के गुलाम बन जाते हैं। बातों ही से हमारे अंग्रेज़ महाप्रभु हमें शासन करने के अयोग्य सिद्ध करना चाहते हैं इसलिये इनके पिट्ठू बाबू लोग भी बातों ही से अपनी जाति की अयोग्यता सिद्ध करने में तनिक भी कसर नहीं रखना चाहते। इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि जिस समय बातों से काम नहीं चलता था और इस देश के निवासियों से हथियार नहीं छीने गये थे उस समय तलवार से काम पड़ता था। तब भी उन विदेशियों और विधर्मियों के साथ न जाने कितने ही तलवार-बहादुर भारतवासी मिले हुए थे और थोड़े से प्रलोभन में फँस कर अपने सगे सम्बन्धियों और भाइयों तक पर हाथ साफ करने में कुछ भी संकोच नहीं करते थे! सच पूछिए तो इतिहासों से यह बात सदा के लिए सब देशों के सम्बन्ध में सत्य सिद्ध है कि देश या जाति के लिए उसके दुश्मन उतने अधिक भयंकर नहीं होते जितने खास अपने ही वे भाई होते हैं जो किसी स्वार्थ या प्रलोभन के कारण देश या जाति के दुश्मनों से मिले होते हैं। ऐसे देशद्रोहियों और विश्वासघातियों की कमी कभी किसी देश में नहीं होती।

जैसा ऊपर कहा गया है, हमारे अंग्रेज़ महाप्रभु तो भारतवासी मात्र को—चाहे वह जिस जाति या धर्म का हो—स्वराज्य के अयोग्य बताते हैं। परन्तु हिन्दुओं के माथे इस अयोग्यता का टीका मढ़ने के प्रयत्न में अपनी मूर्खतावश हमारे मुसलमान भाई भी इन महाप्रभुओं का निरन्तर साथ देते रहते

हैं। इस प्रकार चारों ओर से हिन्दू जाति तिरस्कार का पात्र बन रही है और खास इस जाति के भीतर भी ऐसे जाति-द्रोहियों की कमी नहीं है जो तनिक से स्वार्थ के वशीभूत हो जाति के विरोधियों से मिले रहने में कुछ भी दोष नहीं देखते हैं। हमारे महाप्रभुओं का हमें अयोग्य बताते रहने का उद्देश्य तो स्पष्ट ही है, किन्तु इस बात में उनका साथ देने वाले मुसलमानों या अपने ही जाति भाइयों का उद्देश्य निस्सन्देह महा घृणित है। इस युग में तो शासकों का काम ही अपनी प्रजा में फूट डालकर शासन करने का हुआ करता है। परन्तु जो लोग उनकी इस प्रकार की कुटिल-नीति के शिकार हो जाते हैं उनके समान मूर्ख और कौन हो सकता है? इससे कुछ दिनों तक वे भले ही शासकों के कृपापात्र बने रहें, किन्तु तभी तक वे ऐसे रह सकते हैं जब तक उनके ऐसे रहने से शासकों के मुख्य उद्देश्य—अपना राज्य बनाये रहने—में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं होता है। तनिक से स्वार्थ के लिए देश और जाति की स्वतंत्रता बेंच देना जैसा घोर पाप-कर्म है, देश को सदा परतंत्रता के पाश में जकड़े रहने में सहायता पहुँचाना उससे किसी भी अंश में कम पाप नहीं है।

हिन्दुओं को अयोग्य बताने के दो कारण?

हिन्दुओं को अयोग्य बताने के दो बड़े कारण हैं। एक तो यह कि क्या मुसलमान और क्या अंग्रेज़ जो भी भारत के शासक बने, उन सबने ही यहां का शासन ऐसे समय में प्राप्त किया जब कि हिन्दू जाति निस्सन्देह नाना प्रकार के गृह-युद्धों में संलग्न थी। ईर्ष्या-द्वेष का बाजार यहां पर इतना गर्म हो

रहा था कि भाई भाई के जान के ग्राहक बन रहे थे। सावन में जो अन्धा होता है उसे सदा हरियाली ही सूझती है। इसीसे मुसलमानों और अंग्रेजों को आज भी हिन्दू-जाति वैसे ही गृहकलह में संलग्न दिखती है जैसी यह उस समय उन्हें दिखाई पड़ी थी जब इन्होंने इस देश का शासन-सूत्र ग्रहण किया था। दूसरा कारण यह है कि दोनों ही जातियां जानबूझ कर सदा हिन्दुओं की अयोग्यता की बात इस लिए कहा करती हैं जिसमें हिन्दू कभी पुनः अपने खोये हुए गौरव और स्वत्वों को प्राप्त करने का स्वप्न में भी उत्साह और साहस न कर सकें। इनमें से अंग्रेज तो एकमात्र राजनीतिक विचार से ऐसा करते हैं और मुसलमान भाई मुख्य कर सामाजिक विचार से और कुछ इसलिए भी करते हैं कि ये फिर भविष्य में भारत में इस्लाम साम्राज्य स्थापन करने का स्वप्न देखते हैं।

हिन्दुओं की योग्यता

हिन्दुओं के विरोधी इन्हें अयोग्य सिद्ध करने की चाहे जितनी भी चेष्टाएं करें, वे सफल नहीं हो सकते। कारण, हमारे रामायण और महाभारत के इतिहास को धार्मिक गाथा और कवि-कल्पना कह कर वे भले ही आत्म-संतोष कर लें, लेकिन महाभारत के बाद भी हिन्दू शासनकाल का जो इतिहास प्राप्त है उससे हिन्दुओं की शासन सम्बन्धी योग्यता भलीभाँति प्रमाणित है। महाराज अशोक, विक्रमादित्य, भोज, पृथ्वीराज आदि की शासन सम्बन्धी योग्यता कौन अस्वीकार कर सकता है? महाराज अशोक ईसा से प्रायः तीन सौ वर्ष पहिले पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठे थे और साठ वर्ष से

अधिक समय तक उन्होंने राज्य किया था। उनका राज्य भारत-व्यापी था। उन्होंने अपने राज्य के भीतर सभी सम्प्रदायवालों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी यद्यपि स्वयं बौद्ध मतानुयायी थे। उन्होंने अपने साम्राज्य के भीतर बहुत सी सड़कें बनवायी थीं जिनके ऊपर पेड़ लगवाये और कुएं खुदवाये थे। पशुबध की एकदम रुकावट थी और जगह जगह पर मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा के लिए औषधालय खोले गयेथे। राज्य का एक विभाग प्रजा के चरित्रों पर दृष्टि रखने के वास्ते खुला हुआ था। हर पाँचवें वर्ष पाटलिपुत्र में विराट् संघ होता था जिससे देशवासियों को बहुत लाभ पहुँचता था। जगह जगह पर पाठशालाएं खुली हुई थीं जिनमें बालकों को शिक्षा मिलती थी। पंचवर्षीय संघ के सिवा समय समय पर परिषदें हुआ करती थीं जिनमें कानून और रीतिरसम सम्बन्धी उलझनें सुलझायी जाती थीं और विद्योन्नति के साधनों पर विचार होता था।

महाराज चन्द्रगुप्त के यहां यूनान के बादशाह सिल्यूकस की ओर से मेगस्थनीज नाम का जो दूत रहता था उसने पांच वर्ष तक भारत में रह कर भारत की सामाजिक अवस्था अपनी आँखों से देखी थी। उसने उस समय का जो वर्णन लिखा है, उसमें स्पष्ट ही कहा है कि तत्कालीन भारतीय समाज के रीति-रसम बहुत सादे थे और देशवासी अपनी सत्यनिष्ठा, सुशांति और व्यवस्था के लिए प्रसिद्ध थे। गुलामी या दासत्व प्रथा का कहीं नाम-निशान भी नहीं था। घूस लेने

देने की कोई चर्चा ही नहीं थी। चोरी और मुकद्दमेबाज़ी देश भर में शायद ही कभी सुनने में आती हो। कृषि बड़ी उन्नत अवस्था में थी और महँगी किस चिड़िया का नाम है, यह लोग जानते ही नहीं थे।

पांचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फाहियान नाम का जो चीनी यात्री भारत आया था उसने उत्तर भारत के अनेक स्थानों की यात्रा की थी। उसने अपनी यात्रा का जो वर्णन लिखा है उसमें स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया गया है कि तत्कालीन भारतवासी सुसम्पन्न और सब भांति संतुष्ट थे। उन्हें बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त थी और भारी कर नहीं चुकाने पड़ते थे। वे मद्य नहीं पीते थे और पशुबध नहीं करते थे। अपराध सम्बन्धी कानून कठोर नहीं थे और शारीरिक दण्ड देने की शायद ही कभी आवश्यकता पड़ती हो।

फाहियान से भी अधिक विस्तृत विवरण ह्यून संग का है जिसने ईसा की मृत्यु के ६३० वर्ष बाद भारत की यात्रा की थी। उसने पन्द्रह वर्ष तक उत्तरी और दक्षिणी भारत का भ्रमण करके वृत्तान्त लिखा था। उसने गया के पास नलन्दा विश्वविद्यालय में पाँच वर्ष तक रह कर विद्याध्ययन भी किया था। अपने उस भ्रमण-वृत्तान्त में ह्यूब संग ने दक्षिण भारत के चालुक्यों की बीरता का बड़ा बखान किया है और मालवा तथा मगध के विद्या-प्रचार की सराहना की है। उस समय पाटलिपुत्र नष्ट हो चुका था। गुजरात अपने बड़े व्यापार और धनधान्य के लिए प्रख्यात था। देश की राज्य-व्यवस्था बड़े ही उदार सिद्धान्तों के आधार पर थी। कर बहुत ही हल्के

थे और बेगार का नाम-निशान भी न था। राज्य के उच्च पदाधिकारियों को जीवन निर्वाह के लिए भूमि मिली हुई थी। राज्य की आमदनी चार भागों में बाँटी गई थी। एक भाग से राज्य के खर्च चलते थे, दूसरे से राज्य-कर्मचारियों को सहायता दी जाती थी, तीसरा भाग विद्वानों को पुरस्कार देने के निमित्त अलग रखा जाता था और चौथे भाग से धार्मिक संस्थाओं को दान दिये जाते थे। भारतीयों के चरित्र की सराहना करते हुए ह्यून संग ने लिखा है कि वे सत्यनिष्ठ, ईमानदार, धर्मात्मा और सरल स्वभाव के होते थे। धार्मिक मामलों में देशवासी बड़े ही सहिष्णु थे। ह्यून संग जहां कहीं भी गया उसने ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म दोनों ही को पास पास ही फलते फूलते देखा था तो भी कहीं धार्मिक मतभेद के कारण कलह होती नहीं दिखाई पड़ती थी।

मुसलमानों का आधिपत्य

इस प्रकार जब विदेशी यात्री तक हिन्दुओं की शासन सम्बन्धी योग्यता मुक्तकंठ से स्वीकार कर रहे हैं तब हमारे विरोधियों का यह कथन सर्वथा निर्मूल सिद्ध होता है कि हिन्दू कभी शासन करने के योग्य ही नहीं थे। फिर सहज ही प्रश्न उठता है कि यदि हिन्दुओं में शासन सम्बन्धी योग्यता होती तो दूर देशों से आकर मुसलमान कैसे यहाँ पर अपना राज्य स्थापित कर लेते? साधारणतः इसके दो ही उत्तर हो सकते हैं--या तो तत्कालीन हिन्दू राजे अयोग्य रहे हों या आक्रमणकारी मुसलमान हिन्दू-राजाओं से अधिक शक्ति सम्पन्न हों। इतिहास से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में महमूद गज़नवी आदि

इस देश को लूटने ही के विचार से आये थे और अपना राज्य स्थापित करने की उनकी इच्छा कदापि नहीं थी। परन्तु उन लुटेरों का प्रबल विरोध स्थानिक हिन्दुओं और राजाओं ने किया था यह भी इतिहास से सिद्ध है। इतने पर भी महमूद गजनवी ने सत्रह बार आक्रमण करके भारत के भिन्न भिन्न स्थानों को लूटा था इसका एकमात्र कारण यही था कि उस समय उत्तरी भारत में अनेक छोटे छोटे राज्य हो गये थे जो परस्पर के ईर्ष्या-द्वेष के कारण एक साथ मिलकर विधर्मियों का सामना नहीं कर सकते थे। इसी से पंजाब के राजा जैपाल को महमूद गजनवी के बाप सुबुकतगीन की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। पीछे जब गजनी राज्य पर मुहम्मद गोरी का अधिकार हो गया तब उसने पंजाब पर पूरा अधिकार जमाने के विचार से आक्रमण किया। उसके दो आक्रमण निष्फल हुए, किन्तु ११८६ ई० में उसने लाहोर को छीन लिया और वहाँ के राजा को कैद कर लिया। इस तरह पूरे पंजाब पर अधिकार करके मुहम्मद गोरी ने हिन्दुस्तान को विजय करने की तैयारी की। उस समय उत्तरी भारत में दो प्रबल राजपूत राज्य थे। कन्नौज राज्य के सिंहासन पर जयचन्द राठौर और दिल्ली तथा अजमेर राज्य के अधिपति पृथ्वीराज चौहान थे। इन दोनों राजाओं की अधीनता में कितने ही राजपूत सरदार थे। परन्तु पृथ्वीराज और जयचंद में आपस में फूट पड़ गई थी जिससे अन्य राजपूत सरदार भी विदेशी और विधर्मी मुहम्मद गोरी को भारत से भगाने के लिए मिलकर नहीं लड़ सके। सच पूछिये तो पृथ्वीराज और जयचंद में फूट न होती तो मुहम्मद गोरी को आगे बढ़ने का साहस ही नहीं हो सकता था। तो भी पृथ्वीराज ने अकेले अपनी ही सेना से मुहम्मद

गोरी को कई बार हराया था और यदि पामर जयचन्द ने उस विधर्मी को उत्साह प्रदान न किया होता तो हिन्दुस्तान में मुसलमानी राज्य की नींव न जमने पाती। परन्तु जिस पारस्परिक फूट का बदला चुकाने के लिए जयचन्द ने एक विधर्मी विदेशी की शरण ली थी उसी के कारण ११९३ ई० में पृथ्वीराज की हार हुई और पापी जयचन्द ने सदा के लिए हिन्दुओं के ऊपर विदेशियों और विधर्मियों का राज्य स्थापित करा दिया। पीछे साल ही के भीतर मुहम्मद गोरी ने जयचन्द को भी परास्त करके उसका बध कर डाला, किन्तु आपस में फूटने के कारण दोनों राजाओं की दुर्गति के साथ ही भारत भी ऐसी दुर्गति को प्राप्त हुआ जिससे आज तक इसका निस्तार नहीं हो सका। जयचन्द का बध करने के उपरान्त मुहम्मद गोरी ने उत्तर भारत के अन्य कई छोटे राज्यों पर भी विजय प्राप्त की और बारहवीं शताब्दी समाप्त होते होते मुसलमान उत्तर भारत के बहुत बड़े भाग के अधिपति बन बैठे। धीरे धीरे समस्त उत्तरी भारत मुसलमानों के अधिकार में आ गया और दक्षिण भारत पर भी उनकी चढ़ाइयां होने लगीं। इतिहास साक्षी है कि प्रायः सर्वत्र ही पृथ्वीराज-जयचन्द जैसी पारस्परिक फूट ने ही मुसलमानों को विजय प्रदान किया और साढ़े तीन सौ वर्ष के भीतर अकबर के समय तक प्रायः समस्त भारत पर मुसलमान साम्राज्य स्थापित हो गया। हिन्दुओं की आपस की फूट इस दर्जे तक बढ़ी हुई थी कि मुहम्मद तुगलक जैसे पागल यवन बादशाह ने अपने मनोरञ्जन के लिए मनुष्यों तक का शिकार किया, तो भी हिन्दुओं को साहस नहीं हुआ कि सब मिलकर सब के दुश्मन विदेशी और विधर्मी यवनों को भारत से निकाल बाहर करने के लिए प्रयत्न करते।

हिन्दुओं की धर्म-रक्षा

परन्तु विदेशियों और विधर्मियों की अधीनता में हो जाने पर भी सभी हिन्दू मुसलमान नहीं बन गये। यद्यपि मुसलमान शासक प्रारम्भ से ही हिन्दुओं को मुसलमान बना लेने के लिए व्याकुल थे। सच पूछिये तो यह हिन्दू-धर्म की बड़ी भारी विशेषता थी कि न तो अकबर जैसे मिलनसार बादशाह की मिलनसारी ही हिन्दू-धर्म का अस्तित्व मिटा सकी और न औरंगजेब जैसे धर्मान्ध बादशाह की तलवार ही हिन्दू-धर्म को मिटाने में सफलता प्राप्त कर सकी। इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानी राज्यकाल में भारत का एक बड़ा भाग हिन्दू-धर्म को छोड़ कर मुसलमान हो गया था और कितने ही राजपूत राजाओं ने भी बादशाह को अपनी बहिनें और बेटियां देकर उनसे नाता जोड़ लिया था, परन्तु फिर भी हिन्दू-धर्म की विशेषताओं ने सब प्रकार के परीक्षणों से हिन्दू-धर्म को बेदाग बचा लिया और अनेक प्रकार के प्रलोभनों के होने पर भी हिन्दू-धर्म की कोई विशेष क्षति नहीं हो सकी यद्यपि पाँच छः सौ वर्ष तक मुसलमानों का राज्य बना रहा। समय समय पर मुसलमानों के हिन्दू-धर्म पर होने वाले प्रबल आक्रमणों से हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए कितने ही धर्मवीरों ने विधर्मियों से लोहा लिया और यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं कि यदि उन्होंने अपना सर्वस्व लगा कर हिन्दू-धर्म की रक्षा न की होती तो अकबर की मिलनसारी और औरंगजेब की तलवार ने हिन्दुस्थान को निश्चय ही यवनस्थान बना दिया होता और आज हिन्दू जाति का भूमण्डल पर कहीं नाम-निशान भी न होता। जिन लोगों ने हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए अपना

सर्वस्व लगा दिया था उन धर्मवीरों में सब से मुख्य उदयपुर के राना प्रताप सिंह और महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं महाराष्ट्र-केसरी छत्रपति शिवाजी की जीवनी लिखी जायगी और यह दिखाया जायगा कि किस प्रकार एक साधारण जागीरदार के पुत्र होकर उन्होंने तत्कालीन महा-प्रबल यवन राज्यों से लोहा लेकर हिन्दू-धर्म की रक्षा की थी।

शिवाजी के समय का भारत

हमारे चरित्रनायक छत्रपति शिवाजी का जन्म सन् १६२७ (सम्बत् १६८४) के बैसाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया वृहस्पतिवार को शाहजी भोंसला की धर्मपत्नी जीजी बाई के गर्भ से शिवनेर नामक दुर्ग में हुआ था। उनके जन्म के कुछ ही महीने बाद दिल्ली के बादशाह जहांगीर की मृत्यु होने के पश्चात् शाहजहां दिल्लीश्वर बने थे। उस समय तक दिल्ली के मुगल बादशाहों का राज्य समस्त उत्तर भारत में फैल गया था और दक्षिण के राज्यों ने भी दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अकबर ने पश्चिम में काबुल से लेकर पूर्व में बंगाल तक और उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में बरार तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया था। एकमात्र उदयपुर के महाराना प्रताप सिंह ने ही अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अकबर से सामना किया था और जीते जी तक उसकी अधीनता नहीं स्वीकार की थी। परन्तु महाराना प्रताप सिंह के पीछे उनके पुत्र अमरसिंह मेवाड़ को स्वतन्त्र नहीं रख सके। अकबर के बाद जहांगीर ने गद्दी पर बैठते ही मेवाड़-विजय का मनसूबा बाँधा और कई बार शाही सेनाओं

ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। लेकिन वीर राजपूत बराबर उसे पीछे हटाते रहे। अन्त में १६१४ ई० में राजकुमार खुर्रम ने चढ़ाई करके राना अमरसिंह को बादशाह से संधि करने के लिए बाध्य किया। यही खुर्रम जहांगीर के बाद शाहजहां के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठे थे। इस तर कुल उत्तरी भारत पर तो जहांगीर के समय में ही मुगल राज्य की विजय-पताका फहराने लगी थी। परन्तु दक्षिण भारत की ओर से निश्चिन्तता कभी प्राप्त नहीं हुई। अकबर ही यद्यपि अहमद नगर पर अधिकार कर लिया था किन्तु अहमद नगर का राज्य फिर भी नष्ट नहीं हुआ था। मलिक अम्बर ने उस राज्य को फिर दृढ़ करने के उपाय किये और बार बार मुगल सेनाओं को परास्त किया था लेकिन खुर्रम ने १६२१ ई० में उसे भी संधि करने के लिए बाध्य किया था। परन्तु बादशाह होने के बाद भी शाहजहां को अहमद नगर पर अधिकार करने के लिए चढ़ाई करनी पड़ी थी। इस बार दक्षिण का मुगल वायसराय अफगान जेनरल खां जहांलोदी भी बागी होकर अहमद नगर के राजा से मिल गया था। शाहजहां ने १६३० ई० में खांजहां को हराकर कतल कर डाला था तो भी और सात वर्ष तक अहमद नगर राज्य बराबर शाही सेना से सामना करता रहा। अन्त में १६३७ ई० में अहमद नगर राज्य का अन्त हुआ और वह मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। अन्तिम दिनों में छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी भोंसला ने अहमद नगर राज्य की स्वतंत्रता बनाये रखने के लिए बहुत हाथ पैर मारा था, किन्तु जब कुछ बस न चला तब उन्होंने भी बादशाह से मिलकर शाहजहां की स्वीकृति से बीजापुर राज्य की नौकरी कर ली थी।

अहमद नगर राज्य की सेना जिस समय मुगल सेनाओं से लोहा ले रही थी उस समय दक्षिण के एक बड़े मुसलमानी राज्य बीजापुर ने भी अहमद नगर का साथ दिया था। लेकिन १६३६ ई० में बीजापुर ने संधि कर ली थी और मुगल बादशाह को वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया था जिसके बदले में उसे अहमद नगर के राज्य का कुछ भाग मिल गया था। दूसरे मुसलमानी राज्य गोलकुंडा को भी कर देने के लिए बाध्य होना पड़ा था।

इस तरह शिवाजी ने जिस समय हिन्दू राज्य की पुनः स्थापना के लिए उद्योग प्रारम्भ किया था उस समय के भारत का यही चित्र था।

वंश-परिचय

जैसा पहले कहा जा चुका है, छत्रपति शिवाजी के पूज्य पिता का नाम शाहजी भोंसला और माता का जीजीबाई था। भोंसला वंश दक्षिण के आठ प्रसिद्ध मरहठा वंशों में एक अति प्रतिष्ठित वंश माना जाता है, परन्तु कितने ही लोगों को अबतक यह सन्देह है कि शिवाजी के पूर्वज क्षत्रिय नहीं, शूद्र थे। सुप्रसिद्ध मुसलमान इतिहास-लेखक खफी खां तो लिखता है कि शिवाजी उदयपुर के राजवंश के थे। इसी प्रकार स्वर्गीय मि० जस्टिस रानाडे भी अपने मरहठा इतिहास में शिवाजी के पितृ-पक्ष को उदयपुर के राना वंश का ही लिख गये हैं। यद्यपि इस विषय का पूरा वर्णन इतिहास में नहीं मिलता है, किन्तु नामों से पता चलता है कि पठानों के समय में उदयपुर के सीसोदिया वंश में एक शिवरामजी हुए थे। उनके तीन पुत्र

थे जिनमें दो तो मुसलमानों के अत्याचारों के शिकार हो गये थे। छोटे पुत्र भीमसिंह पिता की मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर बैठे थे। भीमसिंह के पीछे उनके पराक्रमशाली पुत्र विजय-भानु ने मुसलमानों के साथ जन्म भर युद्ध जारी रखा था। उनके पीछे कर्णखेल राजा हुए। परन्तु लगातार मुसलमानों से लड़ने के पीछे जब वे लाचार होगये तब उन्हें राजस्थान त्याग देना पड़ा और वे दक्षिण में दौलताबाद के पास वेरुला नामक गांव के 'भोंसले' दुर्ग में जा बसे। तभी से उनके वंशज 'भोंसले' कहलाने लगे। परन्तु 'भोंसला' उन लोगों का वंश-सूचक नाम कैसे पड़ा, ठीक ठीक इसका पता नहीं चलता। कितने ही इतिहास-लेखक उक्त बात को नहीं मानते हैं। एक मुसलमान इतिहास-लेखक लिखता है कि यह 'भोंसला' शब्द घोंसले का अपभ्रंश है। चूंकि इनका प्रथम वंशधर अर्थात् वह लड़का जो राजपूताने से आया था चिरकाल तक जंगल में घूमता रहा जिससे महाराष्ट्र में आने के पीछे घोंसले का अपभ्रंश भोंसला हो गया। पर ग्रांट डिफ साहब एक प्रसिद्ध इतिहास-लेखक हो गये हैं। वे इसका कारण और ही बताते हैं। वे कहते हैं कि बहमनी वंशवालों के राज्य में इस वंश का एक मनुष्य एक पहाड़ी किले पर एक जानवर की कमर में रस्सी बाँध कर चढ़ गया था। उससे पहले कोई उस किले पर नहीं चढ़ा था और किला बड़ा दुर्गम समझा जाता था। उस दिन से उसका नाम 'भोंसला' हो गया। ग्रांट डिफ साहब ने उस जानवर का नाम नहीं दिया है पर हमारी समझ से वह जानवर 'गोह' थी जिसकी कमर में रस्सी बांध कर उसके सहारे बड़ी ऊँची दीवार पर चढ़ना एक साधारण बात होती

है। वह चिकने से चिकने स्थान पर अपने पंजे गड़ा देती है और नामी चोर लोग उसे प्रायः ऐसा सिखा रखते हैं कि जिस ऊँची दीवार पर बाहर से वे चढ़ना चाहते हैं उसकी कमर में रस्सी बांध कर उसे चढ़ा देते हैं जब वह ऊपर जाकर अपने पंजे दीवार पर जमा लेती है तब उस रस्सी के द्वारा वे दीवार पर चढ़ जाते हैं। 'गोहचढ़ा' शब्द ही बिगड़ कर पीछे 'घोसला' या 'भोंसला' बना हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

जो हो, कर्णखेल के पुत्र जयकरण और उनके पुत्र महाकरण हुए। महाकरण की मृत्यु युद्धक्षेत्र में हुई जिससे वेरुल गांव में भारी शोक छा गया था। यहां तक कि उनके प्रिय पुत्र शिवभीम ने भी शोकातुर हो उनका अनुगमन किया था। शम्भाजी इन्हीं के पुत्र थे। शम्भाजी सन् १५३१ ई० में पैदा हुए थे। जिस समय शम्भाजी भोंसले का जन्म हुआ था उस समय उनके पास केवल तीन चार गांव थे। शम्भाजी के दो पुत्र थे जिनमें बड़े का नाम मल्लजी और छोटे का विटोजी था। मल्लजी का जन्म सन् १५५२ ई० में हुआ था। मल्लजी का विवाह फुलहन के देशमुख वंगजी की बहिन दीप बाई के साथ हुआ था। कहा जाता है कि शाह शरीफ नामक एक मुसलमान फकीर के आशीर्वाद से मल्लजी को पुत्र-रत्न लाभ हुआ था इसीसे मल्लजी ने उसका नाम शाहजी रखा। शाहजी का जन्म सन् १५९४ ई० में हुआ था। दीप बाई के गर्भ से कालान्तर में एक और पुत्र जन्मा जिसका नाम शरीफजी रखा गया था। दीप बाई के भाई का नाम रावनाटक वीरमल था जिसे जगपाल भी कहते थे। वह सरदार अपने समय का

एक भारी वीर हो गया है। बीजापुर के राज्य में उसके वंश का दूसरा नम्बर था। शाहजी भोंसला का बालपन क्षत्रियोचित ढंग से बीता और थोड़ी ही अवस्था में शस्त्र-विद्या में वे बड़े कुशल हो गये थे। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी इसलिए विद्यालाभ करने में भी उन्हें अधिक काल नहीं लगा।

शाहजी भोंसले का विवाह यादवराव लुकजी की सौभाग्यवती कन्या जीजी बाई के साथ हुआ था। मरहठा वंश में यादव का वंश सब से अधिक प्रतिष्ठित और बलशाली था और यादवराव का एक वंशज अहमद नगर के निजामशाही राज्य में दस हजार का जागीरदार था। शाहजी भोंसले के विवाह की कथा भी बड़ी मनोरञ्जक है। सन् १५९९ ई० में जब कि बालक शाहजी अभी पाँच ही वर्ष के थे उनके पिता मल्लजी उन्हें लेकर अपने मित्र यादवराव लुकजी के यहाँ होली मनाने को गये। यद्यपि मल्लजी की जागीर लुकजी की जागीर से बहुत ही छोटी थी, पर प्रेम दोनों में बहुत बड़ा था। इसीसे तिथि-त्योहारों पर मल्लजी बराबर यादवराव लुकजी के यहाँ जाया करते थे। यादवराव लुकजी ने पंचवर्षीय बालक शाहजी की सुन्दरता और मीठी तोतली वाणी पर मुग्ध हो उसे अपनी गोद में उठा लिया। लुकजी के समीप ही उनकी कन्या जीजी बाई उपस्थित थी। फिर क्या था बालक शाहजी कन्या जीजी बाई को पाकर उसके साथ खेलने लगा जिससे यादवराव लुकजी के आनन्द का पारावार न रहा। यादवराव ने हँसते हँसते प्यारी पुत्री से कहा 'जीजी ! तू शाहजी से व्याह करेगी ?' उपस्थित लोगों से लुकजी ने कहा कि 'क्या ही सुन्दर जोड़ी है।' मल्लजी यादवराव की इन बातों से खुशी के मारे उछल पड़े

और लोगों को सम्बोधन कर बोले, "भाइयो! तुम साक्षी हो आज यादवराव ने अपनी कन्या का विवाह मेरे पुत्र के साथ पक्का कर दिया। अब ये अपने वचन से हटने न पावें।" यादवराव मल्लजी की इस बात को सुनकर कुछ घबड़ा गये। दूसरे दिन फिर मल्लजी के यहां निमंत्रण भेजा गया तब मल्लजी ने यादवराव को कहला भेजा कि जब तक मेरे पुत्र के साथ अपनी कन्या का विवाह पक्का न कर दोगे तब तक निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकता। यादवराव लुकजी की स्त्री के कान में जब मल्लजी का सन्देशा पड़ा तो वे और भी क्रुद्ध हुईं, क्योंकि उन दिनों मल्लजी की हैसियत यादवराव के मुकाबले में बहुत ही कम थी और उनकी मानमर्यादा भी लुकजी से बहुत बढ़ी चढ़ी न थी। इतने बड़े धनी यादवराव भला क्योंकर एक साधारण हैसियत के मल्लजी के यहां अपनी लड़की व्याह सकते थे? यहां तो यह प्रथा है कि लड़का चाहे कुरूप और निस्तेज ही क्यों न हो पर है वह धनी का तो वही श्रेष्ठ है। धन की महिमा किसी कवि ने क्या ही उत्तम रूप से बखानी है—

यस्याऽस्ति वित्तं स नरःकुलीनः स पंडितश्च श्रुतिमान् गुणज्ञः।
सएव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते॥

अर्थात् जिसके धन है वही कुलीन, वही पण्डित, वही गुणवान्, वही वक्ता और वही दर्शनीय माना जाता है। धन ही में सब गुण बसते हैं।

यादवराव की पत्नी ने इसीसे तिरस्कारपूर्वक मल्लजी से कहला भेजा कि, 'तुम स्वप्न में भी ऐसा ध्यान न करना'।

जब मल्लजी ने यादवराव की पत्नी का संदेशा सुना तो वे बड़े लज्जित और खिन्न हुए। उन्होंने अपने मन में सोचा कि यादवराव यदि यादव वंश के हैं तो मैं भी तो महा प्रतापी सूर्यवंश का हूँ। यदि उनसे मुझमें कोई कमी है तो यही कि उनके पास मुझ से बहुत अधिक धन है। यदि धन के गर्व से मदोन्मत्त होकर लुकजी मेरे प्रस्ताव का आज तिरस्कार करते हैं तो क्या कल वे ही यादवराव मेरे पास प्रचुर धन हो जाने पर स्वयं ही पुनः अपनी पुत्री का व्याह मेरे पुत्र के साथ करने की इच्छा नहीं कर सकते? इसलिए अब धन संग्रह करना ही मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य होगा। फिर भला संसार में कौन सा कठिन कार्य है जो सच्ची लगन और उद्योग से न सिद्ध हो। कहते हैं कि कुछ ही दिनों बाद मल्लजी को स्वप्न में किसी ख़जाने का हाल मालूम हुआ और वे बड़े धनाढ्य हो गये। मल्लजी देवी भवानी के उपासक थे और कोई कोई यह भी कहते हैं कि भवानी देवी ने ही उन पर प्रसन्न हो उन्हें इतना धन दिया था। जो हो, मल्लजी अब एक साधारण जागीरदार न रहे और दरबार से उन्हें पाँचहजारी का अधिकार मिल गया। मल्लजी ने प्राप्त धन का कुछ भाग तो दान पुण्य में व्यय किया और बाकी से वे मनुष्य और अश्व संग्रह करने लगे। परन्तु उन्हें हर समय यही चिन्ता रहती थी कि किस प्रकार यादवराव लुकजी को नीचा दिखा कर उसकी पुत्री का व्याह शाहजी के साथ कराऊँ। अवसर आते देर नहीं लगी, उन दिनों दिल्ली के सिंहासन पर महा प्रतापी मुगल सम्राट् अकबर विराज रहा था। शीघ्र ही अकबर ने दक्षिण विजय के लिए चढ़ाई की। सर्व प्रथम अहमदनगर राज्य पर

मुगल सेना चढ़ आई। अहमदनगर की निजामशाही की अवस्था उस समय बड़ी खराब थी। नवाब को विषय भोग से ही छुट्टी नहीं मिलती थी, खजाने में धन की कमी थी और राज्य धनधान्य शून्य हो रहा था। ऐसे समय में शत्रुसेना से सामना करने के समय यदि नवाब को सहायता दी जायगी तो निस्सन्देह नवाब बड़े कृतज्ञ होंगे और तब सहज ही मनोरथ-सिद्धि होगी, यही सोच मल्लजी ने नवाब को हज़ारों घुड़सवारों और प्रचुर धन से सहायता पहुँचाथी। इसके सिवा अनेकों कुएं और तालाब बनवाकर प्रजा का जल-कष्ट मिटाया। उनके इन सुकार्यों के कारण मल्लजी की ख्याति शीघ्र ही फैल गई और नवाब भी उन पर बड़े प्रसन्न हुए। सहायता के बदले में नवाब ने मल्लजी को चाकन और शिवनेर के दुर्ग और जागीर में पूना तथा सूपा नामक गांव दे डाले। साथ ही उन्हें 'राजा मल्लजी भोंसले' की उपाधि देकर उनका सम्मान और बढ़ा दिया। इससे राजा मल्लजी भोंसले के मुकाबले में यादवराव लुकजी की कीर्त्ति-श्री भी छिप गई। जब नवाब को मल्लजी की इच्छा मालूम हुई तो उसने यादवराव लुकजी से जीजी बाई का विवाह शाहजी के साथ कर देने का अनुरोध किया। अब मल्लजी साधारण श्रेणी के जागीरदार वे मल्लजी तो रहे नहीं थे इसलिए लुकजी ने सहर्ष यह अनुरोध स्वीकार कर लिया और बड़े समारोह के साथ सन् १६०४ ई० में शाहजी भोंसले का जीजी बाई के साथ विवाह हो गया।

जिन दिनों धन-प्राप्ति-निमित्त मल्लजी देवी भवानी की आराधना में लीन थे, कहावत है कि एक दिन देवी ने स्वप्न में मल्लजी से यह कहा कि तेरे वंश में शिवजी जैसा प्रतापी एक

बड़ा राजा होगा जो गो ब्राह्मणों को सतानेवालों का नाश कर महाराष्ट्र में धर्म और न्याय की स्थापना करेगा।

सन् १६२० ई० में मल्लजी स्वर्गवासी हुए और उनके पुत्र शाहजी उत्तराधिकारी बने। वे युद्ध-विद्या में बड़े निपुण थे और जागीर के कामों को बड़ी दक्षता से चलाते थे। पिता की मृत्यु के उपरान्त शाहजी भोंसले को अहमद नगर में अपने खर्च के अधिकार और जागीर मिल गई थी। उस समय दिल्ली के बादशाह जहांगीर थे और उनके सेनाध्यक्ष दक्षिण विजय करने में लगे हुए थे। सन् १६२० ई० की लड़ाई में शाहजी ने अहमद नगर की ओर से लड़कर बड़ी बीरता दिखायी। अहमद नगर की सेना का अध्यक्ष मलिक अम्बर था। शाहजी के ससुर यादवराव लुकजी भी मलिक अम्बर की सहायता पर थे। इस युद्ध में शाहजी भोंसले और यादवराव की वीरता देखकर मुगल सेना-नायक मरहठों की शक्ति ताड़ गया और इस प्रबन्ध में लग गया कि मरहठे मुगल सेना से मिल जायें। कुछ ही दिनों बाद यादवराव तो मलिक अम्बर से क्रुद्ध होकर मुगलों से जा मिले जहां उन्हें बहुत बड़ा अधिकार दिया गया। पर शाहजी भोंसले ने विपत्ति के समय अपनी सरकार का पक्ष नहीं छोड़ा और वे बराबर अहमद नगर की निजामशाही के साथ बने रहे। १६२७ ई० में जहांगीर के मरने के बाद जब १६२८ में शाहजहां मुगल बादशाह हुआ तब उसने दक्षिण में लड़ने वाले सेनाध्यक्ष खांजहां लोदी को दिल्ली वापस बुला लिया। वहां जाने पर जब खांजहां को बेईमानी का सन्देह हुआ तो वह भाग कर अहमद नगर की निजामशाही की शरण में चला गया। शाहजहां ने खांजहां को दण्ड देने के लिए एक बड़ी सेना भेजी

लेकिन शाहजी भोंसले तथा अन्य हिन्दू उमरावों की सहायता से खांजहां ने मुगल सेना को हरा दिया। तब क्रोधित हो स्वयं बादशाह शाहजहां ही बड़ी भारी मुगल सेना लेकर अहमद् नगर पर चढ़ आया। खांजहां डर कर भाग गया। तब शाहजी ने देखा कि जिसके वास्ते हम मुगल सेना के दुश्मन हो रहे हैं जब वही भाग गया तब हमीं क्यों व्यर्थ में अपना नाश करें। इसीसे शाहजी भी मुगल सेना से जा मिले। शाहजहां ने मरहठा सरदार की बड़ी प्रतिष्ठा की और उन्हें छः हजार का अधिकार देकर पाँच हजार सर्दार का अफसर बना दिया। साथ ही और भी बहुत सी जागीर दी। इसके पीछे मलिक अम्बर ने फिर एक बार अहमद् नगर राज्य स्थापन करने की चेष्टा की थी, परन्तु १६२६ ई० में वह मर गया जिससे उसके मन की मन ही में चली गयी। मलिक अम्बर की मृत्यु के एक वर्ष बाद शिवनेर के दुर्ग में शिवाजी का जन्म हुआ था।

शिवाजी का शैशवकाल

शिवनेर के दुर्ग में माता जीजी बाई के गर्भ से हमारे चरित्रनायक शिवाजी का जन्म होने से कोई यह न समझ ले कि वह दुर्ग उनके पिता के अधिकार में था और शिवाजी का जन्म शाहजी के आमोद् प्रमोद् के समय हुआ था। जिस समय शिवाजी ने माता जीजी बाई के गर्भ से जन्म लिया उस समय माता जी शिवनेर के दुर्ग में बन्दीगृह में पड़ी हुई थीं। किस तरह वे बन्दी बनी थीं यह भी सुनने ही योग्य है। जैसा पहिले लिख आये हैं, निजामशाही की हार होने पर शाहजी

के ससुर यादवराव लुकजी तो मुगलों से जा मिले थे, लेकिन शाहजी ने नमकहरामी करना पाप समझा जिससे वे बराबर अहमद नगर की निजामशाही के ही साथ रहे। दो भिन्न भिन्न पक्ष में होने के कारण ससुर दामाद की मुठभेड़ प्रायः हो जाती थी। सन् १६२६ ई० की लड़ाई में इन दोनों का खासा सामना हो गया, शाहजी के साथ उस समय उनके ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी और उनकी पत्नी जीजी बाई भी थीं। जीजी बाई के सात महीने का गर्भ था। उस लड़ाई में शाहजी की हार हुई और लुकजी ने अपने दामाद शाहजी का पीछा किया। शाहजी ने जब देखा कि जीजी बाई गर्भवती होने के कारण अगम्य वन पर्वतों में साथ न चल सकेंगी तब उन्होंने यह सोच उन्हें वहीं छोड़ दिया कि जब इनके पिता लुकजी इन्हें देखेंगे तो अपनी पुत्री जान उनकी रक्षा करें ही गे। किन्तु पीछा करते हुए लुकजी जब जीजी बाई के निकट पहुँचे तो उन्हें शत्रुपत्नी समझ बन्दी बना कर शिवनेर दुर्ग में भेज दिया। कठोरहृदय लुकजी के दिल में क्षणभर के लिए भी यह ध्यान नहीं आया कि जीजी अगर शत्रु की पत्नी है तो हमारी भी तो बेटी है! पीछे जब शाहजी ने खबर पाकर लुकजी को जीजी बाई को भेजने के लिए लिखा तो उन्होंने भेजने से साफ इनकार कर दिया। इसलिए जीजी बाई शिवनेर दुर्ग में बन्दी रहीं और यहीं दो महीने बाद हिन्दुओं की बन्दी काटने वाले पुत्र शिवाजी को जन्म दिया। जिस समय से वे बन्दीगृह में डाली गई थीं उसी समय से उन्होंने दुर्ग की अधिष्ठात्री शिवाई देवी की उपासना करनी शुरू कर दी थी। वे निरन्तर पतिदेव के कुशल और वीर पुत्र के निमित्त देवी से प्रार्थना करती रहती थीं। इसीसे पुत्र-जन्म होने पर उन्होंने उसका नाम भी देवी के नाम पर शिवाजी रखा।

परन्तु यादवराव लुकजी भी बहुत दिनों तक चैन की वंशी न बजा सके। निजामशाही के अल्पवयस्क सुलतान मुर्त्तिजा ने जब बड़े होकर राज्यकार्य सँभाला तब लुकजी की कृतघ्नता का बदला लेने की उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने फतह खां को पदच्युत करके यादवराव लुकजी को पद देने के बहाने बुला भेजा। नवाब की भीतरी चाल तो उन्होंने समझी नहीं वे झट उसके पास जा पहुँचे। नवाब ने उन्हें प्राणदंड दिया और इस प्रकार शिवाजी के नाना लुकजी यादवराव का अन्त हुआ। उनके अन्त के साथ ही जीजीबाई बंधनमुक्त हुईं। पीछे एक बार और जीजी बाई मुसलमानों के हाथ पड़ गयी थीं, लेकिन शाहजी ने बड़े कष्टों से उन्हें छुड़ा कर बालक शिवाजी सहित कुण्डाने के दुर्ग में भेज दिया था। परन्तु सन् १६३३ ई० के लगभग शाहजी ने ससुराल से क्रुद्ध होकर अपना दूसरा विवाह कर लिया था जिससे जीजी बाई को बड़ा दुःख हुआ था और वे अपने पति से विरक्त होकर अपने प्रिय पुत्र शिवाजी के साथ अलग रहने लगी थीं। १६३७ ई० में जब अहमद नगर की निजामशाही का अन्त हो जाने के पीछे शाहजी ने बीजापुर की आदिलशाही में नौकरी कर ली थी उस समय उनकी नई पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी और जीजी बाई भी साथ थीं, लेकिन जीजी बाई ने वहां रहना पसन्द नहीं किया इसीसे वे शिवाजी को लेकर पूने ही में रहने लगीं। आदिलशाही में मिल जाने के कुछ ही दिनों बाद कुहार, रूसकटी, बङ्गलौर, बालापुर और सीर के इलाके भी इन्हें मिल गये और बरार प्रान्त में बाईस देहात की देशमुखी भी उन्हें मिल गयी थी जिससे उनकी जागीर और इलाका बहुत बढ़ गया था।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। शिवाजी शैशव काल से ही अपनी निर्भयता का प्रमाण देने लगे थे। उनकी बाल्यावस्था की एक कहानी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि जब शाहजी बीजापुर दरबार में थे तब मुरारपंत ने एक दिन बालक शिवाजी से कहा कि 'चलो आज तुम्हें दर्बार में ले चलें और बादशाह को सलाम करायें।' बालक शिवाजी ने घृणा-पूर्वक कहा कि, "हम हिन्दू हैं और बादशाह यवन है जो महा नीच होते हैं। हम गो ब्राह्मण के सेवक और वह इनका शत्रु है। हमारा उससे मेल कैसा? मैं ऐसे मनुष्य को देखना नहीं चाहता जो हमारे धर्म का शत्रु है। ऐसे को तो छूना भी पाप है। मैं न तो ऐसे मनुष्य को अपना बादशाह ही मान सकता हूँ और न उसे सलाम ही करना चाहता हूँ। सलाम करना तो दूर रहा, मन में तो आता है कि उसका गला ही काट डालूं।" मुरारपंत ने बालक की बात आश्चर्य के साथ सुनी और उसके माता पिता को भी जा सुनायी। माता पिता दोनों ने वीर बालक शिवाजी को समझाया कि "बेटा! यह समय इस प्रकार की बातों का नहीं है। अब तो मुसल-मानों का राज्य है इसलिए उनके बादशाहों से सलाम करना हमारा धर्म है। बहुत समझा बुझाकर, जब बालक को दर्बार में ले गये तो वहां उसने बादशाह को सलाम नहीं किया। मुरारपंत और शाहजी ने यह कहकर बात टाल दी कि अभी यह बालक है इसलिए दर्बार के नियम यह क्या जाने। परन्तु ज्यों ही शिवाजी दर्बार से लौटे, उन्होंने स्नान किया और नये कपड़े पहिने।

यवनों का अत्याचार

जिस सन् में शिवाजी का जन्म हुआ उसी सन् में शाहजहां दिल्ली का बादशाह हुआ था। वह १६५८ ई० तक रहा, उसके बाद उसका लड़का औरंगजेब गद्दी पर बैठा था। शिवाजी के जीवन की घटनाएं विस्तृत रूप से लिखने के पहिले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उन अन्यायों और अत्याचारों का कुछ वर्णन किया जाय जो इन दोनों बादशाहों के राज्यकाल में विधर्मी यवनों ने धर्मप्राण हिन्दुओं पर किये थे। कारण, छत्रपति शिवाजी ने मुसलमानों के उन्हीं अत्याचारों के विरुद्ध गो-ब्राह्मण और हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए तलवार उठाई थी और महा प्रतापी मुगल राज्य की नींव हिला दी थी। वैसे तो दीन इस्लाम के धर्मग्रंथ कुरान में ही जब मुसलमानों के सिवा बाकी सभी धर्मों के लोग काफिर बताये गये हैं और अनेक स्थलों पर उनसे लड़ने, उन्हें मारने और लूटने का खुल्लमखुल्ला उपदेश दिया गया है तब एक धर्मान्ध और जाहिल मुसलमान से धर्म सम्बन्धी सहिष्णुता की आशा ही कैसे की जा सकती है? परन्तु जिस समय मुसलमानी लुटेरे लूटमार या राज्य करने के लिए भारत में आये उसी समय से उन्होंने साथ ही अपना यह भी लक्ष्य रखा कि जैसे भी हो हिन्दुओं को धर्मभ्रष्ट करके मुसलमान बनाते जायें। उनके लिए ऐसा करने में कुछ कठिनाई भी नहीं हुई। कारण, जैसा पूर्व ही कहा जा चुका है, मुसलमान आक्रमणकारियों के हमलों के वक्त भारत अनेक राज्यों में बटा हुआ था जिनके राजे आपस में ईर्ष्या द्वेष के कारण ऐसे फूटे हुए थे कि सब के शत्रु विदेशी और विधर्मी मुसलमानों का सामना सब

मिल कर नहीं कर सकते थे। इसी कारण तो मुसलमान आक्रमणकारी सहज ही देश के किसी भाग को लूट सकते और यहां के कितने ही लोगों को गुलाम बना कैद कर के अपने साथ ले जाते थे। जब देश का कोई भाग इनके प्रबल आक्रमण के समय अरक्षित दशा में होता था तब लूटमार के साथ ही हिन्दुओं का बध करने और उन्हें धर्मभ्रष्ट करने से उन्हें कौन रोक सकता था ? परन्तु मुसलमान तो ऐसा स्वतन्त्रता-पूर्वक धर्म समझ कर करते थे, क्योंकि उनके धर्मग्रन्थ में ही अन्य धर्मवालों को काफिर बता उनका बध तक करने की स्पष्ट आज्ञा है। उधर मुसलमानों के खुदा ने उन्हें ऐसी स्वतन्त्रता दे रखी थी और इधर हिन्दुओं के खुदा (ईश्वर) ने हिन्दू धर्म का सूत्र कच्चे धागे से भी अधिक निर्बल बना दिया था जिसके कारण मुसलमानों का एक बार संसर्ग हो जाने मात्र से हिन्दू अपने धर्म से पतित हुए समझे जाते थे। और तारीफ तो यह कि किसी कारण से यदि कोई हिन्दू मुसलमान हो गया तो फिर चाहे कोटि यत्न करे वह किसी तरह भी फिर हिन्दू नहीं हो सकता था। जब मुसलमानों को भलीभांति पता चल गया कि हिन्दू धर्म में इतनी कमजोरी है कि उसके भीतर का आदमी मुसलमान तो बनाया जा सकता है, लेकिन फिर वही मुसलमान किसी तरह हिन्दू नहीं हो सकता, तब स्वभावतः मुसलमान आक्रमणकारियों ने नाना भांति के छल बल से हिन्दुओं को मुसलमान बनाना भी अपना एक मुख्य कर्त्तव्य स्थिर कर लिया था। जो मुसलमान बादशाह यहां रहकर राज्य करने लगे वे थोड़े ही आदमियों के साथ गजनी और गोर से आकर यहां टिके थे। यहाँ तक कि मुहम्मद गोरी अपना राज्य तो

भारत में स्थापित कर गया था किन्तु यहां रहकर उसने राज्य कभी नहीं किया और उसकी मृत्यु हो जाने के पीछे गोर से कोई नया आदमी भारत का राज्य करने नहीं आया बल्कि उसी के एक जेनरल कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने को दिल्ली का बादशाह होने की घोषणा कर दी जो प्रारम्भिक दिनों में मुहम्मद गोरी का गुलाम था और इसीसे उसके वंश वाले गुलाम खानदान के कहलाये। जब राज्य स्थापन करने के बाद मुसलमान सुदूर गजनी और गोर से नहीं बल्कि खास हिन्दुस्थान में रह कर राज्य करने लगे और उनके साथ बहुत थोड़े ही मुसलमान आये थे, तब यह स्वाभाविक बात थी कि वे अपना समूह बढ़ाने की चेष्टा सब प्रकार से करते। हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में एक तो वे काफिरों को खुदा के बताये रास्ते पर लाने के कारण अपने धर्मग्रंथ के लेखानुसार खुदा के प्यारे बनते थे और दूसरे जिन लोगों को हिन्दू धर्म छुड़ा वे मुसलमान बना लेंगे वे सब निश्चय ही मुसलमानी राज्य को दृढ़ करने के कारण होंगे, खास कर ऐसी दशा में जब कि फिर हिन्दू धर्म में लौटने के लिए उनके वास्ते हिन्दू धर्म का फाटक ही बन्द था। इन दो मुख्य कारणों से प्रारम्भ से ही मुसलमान बादशाहों का ध्यान हिन्दुओं की संख्या घटाने और अपनी संख्या बढ़ाकर भारत में मुसलमानी राज्य दृढ़ करने की ओर था। इधर जिस हिन्दू धर्म से उनको काम पड़ा था उसके कर्णधार अपनी बहुसंख्या पर गर्व में इतने चूर थे कि मानो हिन्दुओं की संख्या अनन्त है और उसमें से चाहे जितने लोग निकल कर विधर्मी यवन बन जायें तो भी हिन्दुओं का अन्त प्रलयकाल तक नहीं हो सकता। परन्तु जिस प्रकार कोई धनी

आदमी अपने बहुत से धन को मूर्खतावश जब अपरिमित समझ लेता और धीरे धीरे उसे फजूल खर्च करके अन्त में कंगाल बन जाता है ठीक उसी तरह तत्कालीन हिन्दुओं ने मूर्खता की थी। उन्होंने तो ऐसा समझ लिया था कि चाहे जितने हिन्दू मुसलमान हो जायें हिन्दुओं की संख्या घटेगी ही नहीं इसीसे उन्होंने जबर्दस्ती से बनाये गये मुसलमानों को भी फिर हिन्दू धर्म में लेने की कोई सामयिक व्यवस्था नहीं की। इससे मुसलमानों को भारत में अपनी संख्या बढ़ाने में पूरी सहायता मिली और दिन पर दिन अधिकाधिक संख्या में हिन्दू मुसलमान बनाये जाने लगे।

मुसलमान बादशाह हों और वे ही हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की प्रबल इच्छा करें, तो अधिकाधिक हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में कठिनाई ही क्या पड़ सकती थी? बादशाह मुसलमान थे ही इसलिए राज्य के छोटे से बड़े तक सभी अधिकार और पद उनके हाथ में थे। वे बात की बात में जिसे चाहते उसे वह पद और अधिकार दे सकते थे। यह कोई साधारण प्रलोभन नहीं था। मुसलमानों के साथ खास रियायतें होना और उन्हें हिन्दुओं की अपेक्षा विशेष अधिकार मिलना एक साधारण सी बात थी। साथ ही उन बादशाहों ने यह भी अपना नियम बना लिया था कि जो हिन्दू इसलाम धर्म की शरण गहेगा उसे भी वे ही अधिकार प्राप्त होंगे जो शाही खानदान के साथ आये हुए मुसलमानों को हैं। इसके सिवा गैरमुसलिमों के ऊपर 'जजिया' नामक एक कर लगाया जाता था। इन कारणों से मुसलमानी राज्य के प्रारम्भिक दिनों में बहुसंख्यक हिन्दू स्वयमेव हिन्दू धर्म को त्याग मुसल-

मान बन गये थे, और कितनों ही को बनना पड़ा था विजयी मुसलमानों की तलवार के डर से। इधर हिन्दुओं ने शुतुर्मुर्ग पक्षी की तरह शिकारी को निकट आया देख अपना सिर गाड़ आँखें मूंद लेने ही में अपनी रक्षा समझी और यह निश्चय करके ही संतोष कर बैठे थे—

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना ताडयमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥

चाहे कितना ही दुःख प्राप्त हो और मृत्यु का समय भी क्यों न आ पहुँचा हो तो भी यावनी अर्थात् म्लेच्छ भाषा न बोलनी चाहिए और मतवाला हाथी मारने को क्यों न दौड़ा आता हो तो भी जैन मन्दिर में न प्रवेश करे भले ही वह हाथी फाड़ डाले।

हो सकता है कि ऐसे धर्मवाक्यों ने हिन्दुओं को विधर्मियों से सम्पर्क न रखने में बहुत कुछ सहायता पहुँचायी हो, पर ऊपर जो कारण हिन्दुओं के मुसलमान बनने के दिखाये गये हैं वे फिर भी अपना काम करते ही रहे और हिन्दू धर्म की विशेष रक्षा न हो सकी। ऊपर के कारणों के सिवा एक बात और भी थी और वह यह कि हिन्दू जाति के भीतर ऊँच नीच का विचार उस समय जड़ पकड़े हुए था। गिरी हुई जातियों को मनुष्योचित अधिकार तो प्राप्त थे ही नहीं इसलिए जब उन्होंने देखा कि मुसलमान हो जाने में हमें सब तरह से लाभ ही है हानि कुछ भी नहीं तब उन्होंने हिन्दू धर्म को तिलाञ्जलि देने में कुछ भी आगा पीछा नहीं किया। सच पूछिये तो मुख्य कर शूद्र और निम्न श्रेणी के हिन्दू ही मुसलमान बने थे

और उच्च श्रेणी के हिन्दुओं में बहुत ही कम लोगों ने दीन इस-लाम की शरण ली थी। जिस समय नरहत्यारे मुहम्मद तुगलक के पागलपन के कारण पठानों की बादशाहत के अन्तिम दिन आ गये और राजशक्ति ढीली पड़ने लगी उसी समय हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए कई महान् आत्माएं भी पैदा हो गईं। सबसे पहले रामानन्द स्वामी हुए जिन्होंने एक ही राम को ऊँच नीच सब का स्वामी बताया और उत्तर भारत के निम्न-श्रेणी के हिन्दुओं में धर्म का प्रचार किया। श्री रामानन्द स्वामी के एक शिष्य कबीरदासजी हुए। ये पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए थे जब कि हिन्दुओं और मुसलमानों में मित्रता हो चली थी। उस समय के अनुसार कबीरदासजी ने भी दोनों जातियों में मेल की शिक्षा दी और बताया 'कि वही राम वही रहिमान।' पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में सुप्रसिद्ध सुधारक गुरू नानक जी हुए जिन्होंने हिन्दू जाति के ऊँच नीच भाव को मिटाने ही का प्रयत्न नहीं किया बल्कि कितने ही मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया। एक और बड़े सुधारक चैतन्य जी बंगाल में हुए जिनका जन्म १४८५ ई० में बंगाल के नवद्वीप नगर के एक ब्राह्मण के घर हुआ था। उन्होंने एकमात्र प्रेम और विश्वास से ही परमात्मा की प्राप्ति का उपदेश किया और मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया। उनके प्रधान शिष्यों में एक मुसलमान शिष्य भी था। इस तरह इन धर्मोपदेशकों से जितना हो सका उतना हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए किया, किन्तु शासक होने के कारण अपना दीन बढ़ाने के जो सुभीते मुसलमानों को थे उनके कारण दिन पर दिन हिन्दुओं की संख्या कम होती रही और मुसल-मान बढ़ते ही गये।

पठानों के बाद दिल्ली की बादशाहत जिन मुगलों के हाथ आई उनके पहले बादशाह बाबर और दूसरे हुमायूं के समय में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। किन्तु तीसरे बादशाह अकबर के समय में हिन्दू जाति को बड़ी भारी क्षति पहुँची और अकबर की मिलनसारी की नीति ने दीन इसलाम बढ़ाने में वह काम किया जो आगे चलकर औरंगजेब की तलवार ने भी नहीं कर पाया। उसके पहिले के बादशाहों ने यद्यपि राजपूताने पर चढ़ाई करके कई राजपूत राजाओं को हराया भी था, किन्तु वे उन्हें अपने वश में नहीं कर पाये थे। अवसर मिलते ही वे राजपूत राजा फिर सिर उठाने में देर नहीं करते थे। राजपूतों को धर्मभ्रष्ट करने में तो किसी को भी सफलता नहीं प्राप्त हुई थी। अकबर ने जब चारों ओर के उपद्रव दबा लिये तब सब से पहिले उसका ध्यान राजपूत राजाओं को ही वश करने की ओर गया। परन्तु पुराने अनुभवों से उसने लाभ उठाया और युद्ध द्वारा वश में करने का विचार न कर अकबर ने मेल मिलाप की नीति ग्रहण की। वह स्वभाव से भी सहिष्णु था इसलिए उसकी कूटनीति सफल होने में देर नहीं लगी। सबसे पहिले जयपुर (जो उस समय अम्बर के नाम से प्रसिद्ध था) के राजा ने अकबर से मित्रता की और यहां तक गिरे कि उन्होंने बादशाह अकबर के साथ अपनी लड़की का व्याह भी कर दिया! उन अम्बर-नरेश का नाम बिहारीमल था। अकबर ने इसके बदले में अपने ससुर और साले भगवानदास को राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किया। मारवाड़ (जोधपुर) के राजा तथा अन्य राजपूत राजाओं ने भी अकबर की कूटनीति से अपनी रक्षा नहीं कर पायी और सबने अकबर की अधीनता

स्वीकार कर ली थी। जोधपुर के राजा मानसिंह की बहिन जोधाबाई का व्याह अकबर के सबसे बड़े लड़के सलीम के साथ हुआ था। इस प्रकार अकबर ने अपनी मेलमिलाप की नीति से कुल राजपूत राजाओं से रोटी-बेटी का व्यवहार करके उन्हें एक प्रकार से मुसलमान बना लिया था। उस समय अगर किसी राजपूत वीर ने बादशाह के साले ससुरे बनने से घृणा करते हुए अपने प्राणप्रिय धर्म की रक्षा की थी तो वे थे मेवाड़ के क्षत्रिय-कुलभूषण संग्रामसिंह के पुत्र राना उदयसिंह जिन्होंने अपना सारा राजपाट खो दिया लेकिन धर्म को हाथ से नहीं जाने दिया। उनके पीछे महाराना प्रतापसिंह ने तो अपने धर्म की रक्षा करते हुए इतने प्रतापी सम्राट् अकबर की सेना के दांत खट्टे कर दिये थे और अन्त समय तक अपनी राजपूती शान पर दाग नहीं लगने दिया था।

जैसा पहिले कहा जा चुका है, अकबर ने अपना मजहब बढ़ाने के लिए मेल-मिलाप की नीति से ही काम लिया था और तलवार के बल हिन्दुओं को मुसलमान नहीं बनाना चाहा इससे उसकी मधुर नीति के जाल में बड़े बड़े हिन्दू नृपति भीं फँस गये थे। अकबर के समय में हिन्दुओं पर यवनों के वे अत्याचार नहीं हो सके जो उसके पहिले के मुसलमान बादशाहों ने किये थे यद्यपि महाराना प्रताप को अपने धर्म की रक्षा के लिए लोहे के चने चबाने पड़े थे। किन्तु महाराना प्रताप के कष्टों का कारण जितना अकबर नहीं था उतना पास पड़ोस के वे हिन्दू राजा थे जो स्वयं तो बादशाह के साले ससुरे बन चुके थे इसलिए 'रांड़ खुशी जब सब को मारे' की कहावत के अनुसार वे राना को भी अपने दर्जे में घसीटना चाहते थे।

कौन कह सकता है कि राजा मानसिंह ने यदि अकबर को राना प्रताप के विरुद्ध इतना न भड़काया होता और विधर्मियों की सेना के अध्यक्ष बन कर वीर प्रताप से युद्ध न किया होता तो राना को वैसी कठिनाइयां झेलनी पड़तीं ? परन्तु यह तो सदा सब देशों में देखने ही में आता है कि स्वतंत्रता की रक्षा या प्राप्ति के लिए उद्योग करने वालों को न केवल शत्रुओं से ही सामना करना पड़ता है बल्कि शत्रुपक्ष में गये हुए अपने ही देशद्रोही भाइयों की ओर भी अधिक ध्यान रखना पड़ता है जो शत्रु से भी अधिक भयंकर होते हैं।

अकबर के बाद जहांगीर और शाहजहां उसकी मेल-मिलाप की नीति से ही काम करते रहे इससे उन दोनों बाद-शाहों के समय में हिन्दुओं पर यवनों की ओर से कोई विशेष अत्याचार नहीं हो सके थे। किन्तु जिस दिन से (सन् १६५८ ई०) औरंगजेब ने दिल्ली की गद्दी पर अपने पैर रखे उसी दिन से यवनों के अत्याचारों की सीमा ही न रही। उसने गद्दी पर बैठने के समय से ही हिन्दुओं के साथ पाशविक नीति से काम लेना शुरू किया। औरंगजेब ने मूर्त्तिपूजा के समय घड़ी-घंटा बजाना और मूर्त्तियों की सवारी निकालना बन्द कर दिया और हिन्दू त्योहारों पर होने वाले मेलों और उत्सवों को बन्द करने की आज्ञा जारी कर दी। काशीजी को हिन्दुओं का प्रधान तीर्थ और विद्यास्थान समझ कर उसने वहां के कई मंदिरों को ढहाने की आज्ञा दी और उनके सामान से एक शानदार मसजिद बनवायी। इसी तरह मथुरा के मन्दिर भी गिराये और मूर्तियां नष्ट-भ्रष्ट की गयीं। साथ ही सभी प्रान्तों के हाकिमों के नाम हुक्म जारी किया गया कि जहां कहीं

हिन्दुओं के मन्दिर हों उन्हें गिरवा दो, उनकी मूर्तियां फेंकवा दो और हिन्दू पाठशालाएं बन्द कर दो। उसने मुसलमानों पर लगे हुए कर तो आधे कर दिये, पर हिन्दुओं के कर ज्यों के त्यों बने रहने दिये। उसने सभी हाकिमों के नाम यह भी आज्ञा निकाल दी कि किसी सरकारी पद पर कोई हिन्दू नौकर न रखा जाय और सभी पदों पर मुसलमान हो नियुक्त किये जायें। औरंगजेब की इस प्रकार की हिन्दुओं से घृणा करने की नीति के कारण हिन्दुओं में जब घोर अशान्ति पैदा हो गई तब जगह जगह उपद्रव होना स्वाभाविक बात थी। १६७६ ई० में दिल्ली के उत्तर नारनौल के सतनामी बागी हो गये तब औरंगजेब की धर्मान्धता और भी भड़क उठी और उसने माल के मुहकमें के सभी हिन्दू अफसरों को बर्खास्त करके उनकी जगहों पर अनुभवशून्य मुसलमान नौकर रख दिये। इस से मालगुजारी वसूल होने में बड़ी गड़बड़ मच गई जिससे दक्षिण की चढ़ाइयों के लिए खजाने में काफी रकम न रह गई। तब उस कमी को पूरा करने के लिए औरंगजेब ने सन् १६७७ ई० में फिर गैर-मुसलिम प्रजा पर 'जजिया' लगा दिया। इससे हिन्दुओं का हृदय और भी अधिक अशान्त हो उठा। राजभक्त राजपूतों ने बादशाह से बहुत विनती की कि जो 'जजिया' अकबर बादशाह ने उठा दिया था वह अब फिर से लगा कर हिन्दुओं का जी न दुखाया जाय, पर औरंगजेब ने उनकी भी न सुनी। जब हजारों हिन्दू राजमहल के पास एकत्र होकर 'जजिया' उठाने के लिए बादशाह से प्रार्थना करने लगे तो पापी औरंगजेब ने उनके ऊपर हाथी दौड़ा दिये जिनके पावों तले कितने ही निरपराध कुचले गये। इस तरह हिन्दू

धर्म पर जब उस समय के बादशाह द्वारा घोर अत्याचार किये जा रहे थे तभी भगवान शंकर की दया से हिन्दुओं की मान-मर्यादा के रक्षक छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ जिन्होंने औरंगजेब जैसे महाशक्ति सम्पन्न बादशाह से हिन्दुओं पर होने वाले यवनों के अत्याचारों का खासा बदला लिया और एक बार फिर हिन्दुओं का साम्राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। यद्यपि छत्रपति शिवाजी के वंशज उस हिन्दू साम्राज्य को संभाल नहीं सके, किन्तु औरंगजेब को उन्होंने जो धक्के दिये थे उनसे मुगल बादशाहत भी नष्ट हो चली और भारतव्यापी मुगल साम्राज्य औरंगजेब की मृत्यु के कुछ ही काल बाद कराल काल के गाल में चला गया। सच पूछिये तो हिन्दू धर्म की रक्षा भगवान को अभीष्ट थी इसीसे उन्होंने धर्मान्ध औरंगजेब से सामना करने के वास्ते शिवाजी जैसे धर्मवीर को उत्पन्न कर दिया था नहीं तो औरंगजेबी तलवार ने हमारे पवित्र धर्म को न जाने किस लोक में भेज दिया होता। यवनों के उपरोक्त जघन्य अत्याचारों के प्रतिकार के लिए ही छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ था और इसी कार्य को उन्होंने यावज्जीवन पूरा किया था। इन यावनी अत्याचारों को ध्यान में रखने से ही छत्रपति शिवाजी के कार्यों का महत्व भलीभाँति समझ में आ सकेगा।

शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा

ऊपर यवनों के अत्याचारों का वर्णन करने के पहिले यह दिखाया जा चुका है कि हमारे चरित्र-नायक का जन्म उस समय हुआ था जब शिवनेर के दुर्ग में माता जीजी बाई बन्दी

की अवस्था में थीं। भारत के इतिहास में यह भी एक विचित्र बात है कि जो महात्मा बन्दीगृह में जन्म लेते हैं वे ही अपने देश और जाति को बन्दीगृह से छुड़ाने में प्रयत्नशील होते और अधर्म का नाश कर धर्म की स्थापना करने में समर्थ होते हैं। योगिराज कृष्ण ने बन्दीगृह में जन्म ग्रहण कर जैसे कंसादि दानवों का नाश किया था वैसे ही हमारे चरित्रनायक ने भी बन्दीगृह में जन्म लेकर यावनी अत्याचारों से हिन्दू-धर्म की रक्षा की थी। सन् १६३७ ई० में अहमदनगर के निजामशाही राज्य का अन्त होने के बाद जब शाहजी भोंसला बीजापुर राज्य की नौकरी करने लगे तब जैसा पहिले कहा जा चुका है, माता जीजी बाई अपने पुत्र शिवाजी को लेकर पूने में रहने लगीं। उधर बीजापुर के नवाब ने भी बीदर और बरार का बहुत बड़ा भाग अपने राज्य में मिला लेने के पीछे शाहजी को कर्नाटक की अराजकता दबाने के लिए भेज दिया। परन्तु कर्नाटक की लड़ाई पर जाने के पहिले ही शाहजी अपने पुत्र शिवाजी का बिवाह निम्बालकर की पुत्री सुई बाई के साथ कर गये। उस समय बालक शिवाजी अपनी आयु के दसवें वर्ष में ही पड़े थे। यवनों के बन्दीगृह में जन्म लेने तथा माता जीजी बाई के साथ मुसलमानों के भय से दर दर ठोकरें खाने के कारण बाल्यावस्था में हो शिवाजी के हृदय में यवनों के प्रति घोर घृणा पैदा हो गई थी। उधर शाहजी से शत्रुता होने के कारण यवन जीजी बाई को तो तंग किया ही करते थे, साथ ही मौका मिलने पर बालक शिवाजी को भी कष्ट पहुँचाने का वे प्रयत्न करते थे। परन्तु वीर माता जीजी बाई अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे पुत्र शिवाजी को यवनों से रक्षा करने के विचार से दर दर छिपाती

रहती थीं जिससे बालक शिवाजी का यवन एक बाल भी बांका नहीं कर सकते थे। जब शिवाजी ने कुछ होश सँभाला तब वे जगह जगह लुकने छिपने से ऊब उठे और माता जीजी बाई से पूछने लगे कि, "मां! तुम यह रोज रोज क्या करती हो?" माता जीजीबाई ने पहिले तो कोमलमति बालक से यवनों के भयङ्कर अत्याचारों को कह कर उसे सदमा पहुँचाना पसन्द नहीं किया, किन्तु अत्यन्त आग्रह करने पर वे बालक शिवाजी से यों कहने लगीं—

"बेटा! जिन विधर्मियों से मैं तुम्हें रात दिन छिपाये रखने का यत्न करती हूँ उन दुष्टों ने वस्तुतः समस्त भारतवर्ष का नाश कर दिया है। म्लेच्छों के कारण हिन्दुओं का हिन्दुत्व नष्ट हो रहा है। हाय! गो ब्राह्मण त्राहि त्राहि करते हुए अनाथों की तरह पददलित हो रहे हैं। कर्मभूमि दक्षिण भी निस्तेज है। हिन्दुओं का रक्त अब ठंढा हो गया है और उसकी गर्मी जाती रही है। अति प्राचीन हिन्दू धर्म की दुर्दशा का वर्णन कौन कर सकता है। प्यारे बेटा! अगर आज अर्जुन, भीम सरीखे वीर होते तो क्या भारत भूमि इस तरह दुर्गति को प्राप्त होती? हा! देखें कब विधर्मी यवनों से भारत का उद्धार होता है?" ऐसी ही मर्मभेदी बातें माता जीजीबाई प्रायः शिवाजी से कातर स्वर में कहा करतीं और बालक शिवाजी भी कभी कभी आवेश में आकर बोल उठते, "माँ, मैं इन अधर्मियों को मार भगाऊँगा।" बालक शिवा की ऐसी बातें सुन माता जीजी बाई देवी शिवाई को मनाने लगतीं और गद्गद्-हृदय हो बालक का मुख चूम लेती थीं। अवस्था बढ़ने के साथ ही शिवाजी के हृदय में यवनों के प्रति घृणा और द्वेष के भाव भी बेतरह बढ़ते गये।

बालपन में ही वे शिवाई देवी की आराधना करने लगे जिनके वे जन्मभर भक्त रहे।

जब शिवाजी के पिता शाहजी बीजापुर राज्य की ओर से कर्नाटक की अराजकता का दमन करने के लिए गये तब जीजी बाई और बालक शिवाजी की रक्षा का भार वे पूने में अपने परम विश्वासपात्र सेवक दादाजी कोनदेव को सपुर्द कर गये जो जाति के ब्राह्मण थे। उन्हीं दादाजी कोनदेव के ऊपर बालक शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा का भी भार था। दादाजी का जन्म वर्त्तमान पूना नगर के मालथान नामक स्थान में हुआ था। पूना की जागीर भी शाहजी ने इन्हीं दादाजी के सपुर्द कर रक्खी थी। अच्छे विद्वान् होने के साथ ही दादाजी जागीर का प्रबन्ध करने में बड़े ही दक्ष थे और बुद्धिमान तो वे एक ही नम्बर के थे। जागीर का प्रबन्ध दादाजी ने ऐसी उत्तमता से किया कि खेती में दूनी उन्नति होने लगी और इलाके की जन-संख्या भी बढ़ चली। सब से अधिक चतुराई उन्होंने इलाके की पहाड़ी आबादी के मावलों को दास बना लेने में दिखायी। मावले बड़े ही बहादुर और युद्धप्रिय थे, किन्तु थे बेचारे बड़े निर्धन जिससे दादाजी ने उन लोगों से वर्षों लगान नहीं लिया और आवश्यकता होने पर उन्हें अपने यहां नौकर रखकर उनका पालन पोषण करते रहे। दादाजी की यह दूरदर्शिता आगे चलकर शिवाजी के बड़े काम आई और ये ही मावले उनकी सेना के सर्वोपरि योद्धा सिद्ध हुए। उधर बालक शिवाजी को थोड़ी सी शिक्षा भी दिलायी, किन्तु मरहठों में उस समय विद्या पढ़ने की विशेष अभिरुचि न होने से शिवाजी की भी शिक्षा नाममात्र की ही रही। हां, युद्ध विद्या सीखना मरहठे अपना

कर्त्तव्य समझते थे इस हेतु दादाजी कोनदेव ने भी शिवाजी को युद्धविद्या की ही शिक्षा देना अपना परम कर्त्तव्य समझा। दादाजी का ध्यान इस ओर विशेषरूप से होने तथा स्वभाव से ही युद्धप्रिय होने के कारण बालक शिवाजी अपनी बाल्यावस्था में ही घोड़े की सवारी में अद्वितीय और तलवार चलाने में अनुपम हो गये थे। साथ ही दादाजी ने शिवाजी का पालन-पोषण ऐसे ढंग से किया और उन्हें वे ऐसा उपदेश देते रहे जिससे कि शिवाजी बालकपन में ही कट्टर हिन्दू बन गये और मुसलमानों के अत्याचारों से हिन्दूजाति की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य समझने लगे। लक्ष्य साधन में तो शिवाजी अपनी जोड़ ही नहीं रखते थे। यद्यपि शिवाजी स्वयं तो रामायण, महाभारतादि ग्रंथों को नहीं पढ़ सकते थे किन्तु जहां कहीं इनकी कथाएं होती थीं वहां वे और सब काम छोड़ कर पहुँचते थे। अपने पूर्वज वीरों की कथाएं सुनकर वे गद्‌गद्‌ हो जाया करते थे। वीरों के पराक्रम की बातें सुन शिवाजी के भुजदंड फड़क उठते थे और तत्कालीन हिन्दू–दुर्दशा का चिन्तन कर वे आँसू बहाने लगते थे। उसी समय वे मन में विचारने लगते थे कि किस तरह पुनः हिन्दू जाति की यवनों के अत्याचारों से रक्षा की जा सकती है और किस तरह विदेशियों से पवित्र भारत भूमि खाली करायी जा सकती है। उन्हें रात दिन यही सोच रहता था कि किस प्रकार हिन्दू संगठन करके गोघातक विदेशियों को भारत से निकाल बाहर कर हिन्दू-राज्य की स्थापना की जाय। इन सब बातों के साथ ही शिवाजी को बाल्यावस्था से ही पहाड़ों और जंगलों की सैर करने का भी बड़ा भारी शौक था। यहां तक कि अभी जब वे जवानी को भी नहीं पहुँचे थे

तभी से दिन भर और कभी-कभी रात-रात भर पहाड़ों में ही घूमते रह जाते थे।

शिवाजी का हिन्दू-संगठन

विदेशी और विधर्मी यवनों को पवित्र भारत-भूमि से निकाल बाहर कर यवन राज्य के स्थान पर हिन्दू राज्य की स्थापना करने का संकल्प तो शिवाजी ने बाल्यावस्था में ही कर लिया था, इसीसे उसी अवस्था से वे उसके लिए प्रयत्न भी करने लगे। उन्होंने स्पष्ट ही देखा कि मुसलमान देवमन्दिरों को तोड़ते हैं, देवताओं की सवारी निकालने में बाधा डालते हैं, देवमूर्त्तियों के साथ बाजा बजाने में रुकावट खड़ी करते हैं, जिन गौओं को हिन्दू माता कह कर पूजते हैं, उन्हीं का बध करने में ये विधर्मी कुछ भी संकोच नहीं करते हैं और जबर्दस्ती तथा नाना प्रकार के छल बल से ये हिन्दुओं को मुसलमान बनाते हैं। राजशक्ति भी यवनों को उनके ऐसे अन्याय कार्यों को करने के लिए बराबर उत्तेजना देती है। तब इतनी बड़ी विरोधी शक्ति का सामना तब तक अकेले क्योंकर किया जा सकता है जब तक हिन्दुओं का एक भारी संगठन न किया जाय? यही सोच शिवाजी ने सबसे पहिले हिन्दू–संगठन की ओर ध्यान दिया। कहना नहीं होगा कि हिन्दू-संगठन करने के लिए उस समय वैसे तो समस्त भारत में ही किन्तु महाराष्ट्र देश और दक्षिण में तो खास कर पूरा सामान एकत्र था। दक्षिण के दो बड़े राज्य गोलकुंडा और बीजापुर यद्यपि दिल्ली के मुगल बादशाह को कर देना स्वीकार कर चुके थे, पर उनकी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं हुई थी। यद्यपि ये दोनों राज्य भी मुसलमान नवाबों के

ही हाथ में थे, किन्तु ये औरंगजेब को राक्षसी नीति के अनुसार काम कर ही नहीं सकते थे। कारण, उधर दिल्ली के बादशाह अपना साम्राज्य बढ़ाने की चिन्ता में थे और औरंगजेब की बराबर यह चेष्टा थी कि किसी न किसी तरह इन दो राज्यों को भी भंग कर इनके इलाके दिल्ली के साम्राज्य में मिला लिये जायं। जब अपने से बहुत ही बड़ी शक्ति का सामना इन राज्यों को निरंतर करना था तब ये क्योंकर हिन्दुओं को शत्रु बना सकते थे? इसीसे दक्षिण के हिन्दू और मरहठे बराबर अपनी जागीरों में एक प्रकार से स्वतंत्र थे और उनके हृदय से स्वतंत्रता का भाव लोप नहीं हो पाया था। इतना ही नहीं उक्त राज्यों के बड़े बड़े पदों पर बराबर हिन्दू नियुक्त होते थे और सैन्य संचालन का काम भी उन्हें दिया जाता था। राज्य की सेनाओं में भी मरहठा सैनिकों की भरमार थी। यहां तक कि जिस समय शिवाजी ने मुगलों से युद्ध छेड़ा उस समय गोलकुंडा में मदन पण्डित मन्त्री थे। महाराष्ट्र देश में लगान वसूल करने का काम तो बिल्कुल ही हिन्दुओं के हाथ में था। इस काम के लिए इलाके बँटे हुए थे और वे देशमुखिया के सपुर्द थे जो लगान वसूल करने के बदले में सिरदेशमुखी अर्थात् कुल लगान का दशमांश पाया करते थे। देशमुखिया लोग लगान वसूल कर देशमुखी ही नहीं लेते थे, युद्ध के समय अपने मुसलमान शासकों की सेना में सम्मिलित हो युद्ध भी करते थे जिसके उपलक्ष्य में जागीरें पाते थे। इस तरह एक प्रकार से समस्त राज्यकार्य मरहठों के ही हाथ में था और गोलकुंडा तथा बीजा-पुर के नवाब नाममात्र के नवाब थे। उनके पास जितने यवन थे उनके सिवा बाहरी भागों से नये मुसलमान इतनी दूरी पर

पहुँच नहीं सकते थे। इसलिए जहां एक ओर मरहठों का राज्य के प्रायः प्रत्येक कार्य में प्राधान्य था वहां उस समय फारसी की जगह देशी भाषा में राज्यकार्य होने लगा था।

जब मरहठों के हाथ में इतने राज्याधिकार थे और उनकी स्वतन्त्रता एक प्रकार से पूरी बनी हुई थी, तब उनका संगठन करने में विशेष कठिनाई नहीं हो सकती यही सोच शिवाजी ने हिन्दू-संगठन का कार्य सर्वप्रथम उठाया, परन्तु साधारण मरहठों के संगठन के पहिले उनका ध्यान मरहठों से भी अधिक उन स्वतन्त्र लोगों की ओर गया जो जंगलों और पर्वतों में रहते थे और राजकीय कोष आदि को लूट कर अपना काम चलाते थे। वे पहाड़ी लोग जिनका पेशा डाका डालना और लूट मार करना ही था शिवाजी को बहुत प्रिय लगे, क्योंकि शिवाजी ने देखा कि वे बहादुर न तो किसी राज्य के अधीन हैं और न किसी प्रकार के कानून के ही पाबंद हैं। दूसरी एक बात शिवाजी ने यह भी सोची होगी कि जितना बड़ा हिन्दू-संगठन करने की आवश्यकता हिन्दू राज्य स्थापित करने के लिए होगी उतने बड़े संगठन के वास्ते बहुत अधिक जन के सिवा बहुत धन की भी आवश्यकता होगी जो उन डाकू सरदारों के द्वारा सहज ही पूरी की जा सकती है, इस वास्ते भी उन्होंने उन पहाड़ी वीरों से मैत्री जोड़ना उचित और आवश्यक समझा होगा। कुछ भी हो, शिवाजी अपना दल संगठित करने के अभिप्राय से दिन रात जंगलों में घूमते रहते और बहुत ही थोड़े समय के वास्ते घर आते थे। उनका इतना करना ही था कि चारों ओर हल्ला मच गया कि शिवाजी तो डाकुओं में मिल गया है और कुराह पर चलने लगा है। दादाजी कोनदेव के

कानों में जब यह बात पड़ी तब उन्होंने जागीर के बहुत बड़े भाग का प्रबन्ध शिवाजी के हाथ में दे दिया। इससे कम से कम इतना तो अवश्य हुआ कि दिन भर उन्हें प्रबन्ध के काम से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती थी इसलिए अपने पहाड़ी डाकू सरदारों के पास वे बहुत थोड़े ही समय के लिए पहुँच पाते थे। किन्तु इतने ही समय के भीतर वे डाकू सर्दार शिवाजी की संगठन-शीलता और निर्भयता आदि गुणों के कारण शिवाजी के हो चुके थे। इतना ही नहीं पहाड़ों और जंगलों में उन सर्दारों के साथ बराबर घूमने के कारण शिवाजी को निकटवर्ती पहाड़ों के सभी दुर्गम मार्गों, किलों और गुफाओं का रत्ती रत्ती का पता था। इधर मावला लोगों के मन को कुछ तो शिवाजी अपने वीरतादि गुणों से और कुछ दादाजी के सद्वर्त्ताओं के कारण पहिले ही से जीत चुके थे अतएव थोड़े ही समय के भीतर उन्होंने उन पहाड़ी डाकू सर्दारों और वीर मावलों का सुदृढ़ संगठन कर लिया जो हिन्दू राज्य की स्थापना के भारी संग्राम में अन्ततक वीर शिवाजी का साथी रहा।

क्या शिवाजी डाकू थे ?

शिवाजी डाकू और लुटेरा था और लूटमार करते करते उसने महाराष्ट्र में अपना राज्य स्थापित कर लिया था, ऐसी बातें उन इतिहास ग्रंथों में लिखी जाती हैं जो आजकल के स्कूलों में पढ़ाये जाते हैं। इस तरह की बातें लिखकर एक उस वीर के प्रति हमारे कोमल-बुद्धि बालकों के हृदय में कुसंस्कार जमाने का सतत उद्योग किया जाता है जिसने भगीरथ उद्योग करके औरंगजेब की रावणशाही से अपने पवित्र हिन्दू धर्म की

रक्षा की थी। स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली इतिहास-पुस्तकों में शिवाजी के उन अगणित गुणों का उल्लेख भी नहीं पाया जाता जिनके बल से उन्हें धर्मरक्षा के अपने पवित्र उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई थी। इसका प्रधान कारण तो यह है कि उस समय के जितने इतिहास हैं वे मुसलमान लेखकों के ही लिखे हुए हैं और वे लेखक भी ऐसे थे जो अपने समय के बादशाहों के आश्रय में इतिहास लिखते थे। तब आश्चर्य ही क्या यदि यवन अत्याचारों के कट्टर शत्रु और इतने बड़े मुगल साम्राज्य के विध्वन्सक शिवाजी चोर और डाकू लिखे जाते हैं? परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या शिवाजी वास्तव में डाकू थे और क्या डाका डालना सब काल के वास्ते तथा प्रत्येक अवस्था में घृणित अपराध ही होता है? शिवाजी ने अपनी जागीर के पास पड़ोस के पहाड़ी डाकू सरदारों को अपने संगठन के भीतर किया था और उनकी सहायता से उन्होंने शत्रुओं का धन लूट कर अपने हिन्दू-संगठन का कार्य सम्पादित किया था इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु उन्होंने किसी वैयक्तिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए या ईर्ष्याद्वेष के बश ऐसा नहीं किया था। उनका पवित्र हिंदू धर्म अत्याचारी यवन औरंगजेब की तलवार के नीचे पड़ा तड़प रहा था। भय था कि औरंगजेब की रावणशाही का समय रहते प्रतिकार न किया जायगा तो भूमंडल का सबसे ज्येष्ठ धर्म सदा के लिये विनष्ट हो जायगा। जो राजशासन प्रजा की रक्षा के लिए होता है उसी के द्वारा यवन राज प्रजा के जान-माल के गाहक बन रहे थे और उसके पवित्र धर्म तक को लूटने

में ईश्वर का भय नहीं करते थे। राजा के लिए उसकी सब प्रजा एक समान होनी चाहिये, किन्तु औरंगजेबशाही में मुसलमान ही एकमात्र परमात्मा के पुत्र थे और हिन्दू काफिर और इसलिये बध के योग्य समझे जाते थे। सब प्रजाजनों पर जहाँ एक समान न्यायपूर्वक कर लगना चाहिये था वहां जब कभी खजाने में कमी पड़ती थी तभी हिन्दुओं के मन्दिर और तीर्थस्थान लूट लिये जाते थे। मुसलमानों की मसजिदें बनाने के लिए हिन्दुओं के देव-मन्दिर ढहाये जाते और उनके सामान से वे मसजिदें तैयार कराई जाती थीं। यह सब बादशाही लूट ही तो थी और ऐसे कार्य डाकाजनी और लूट के सिवा और क्या कहे जा सकते हैं? 'जजिया' क्या था? एक प्रकार का कर था जो केवल उन्हीं लोगों से लिया जाता था जो मुसलमान नहीं थे। यह उन लोगों के धन पर डाका डालना नहीं तो क्या था? इस प्रकार के डाका और लूटमार से जब वह मनुष्य काम ले रहा था जिसके हाथ में भारत की पूरी राजशक्ति थी तब यदि ऐसे डाकू से सामना करने के निमित्त और ऐसे बड़े डाके का अन्त करने के लिए साधन एकत्र करने के विचार से वीर शिवाजी ने भी 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्' की नीति का अवलम्बन किया था, तो वे कैसे बुरे ठहराये जा सकते हैं? कदापि नहीं। तब सहज ही प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या डाका डालना भी उचित और धर्म-सम्मत काम माना जा सकता है? इसका उत्तर 'हां' और 'नहीं' दोनों में दिया जा सकता है। जो वस्तु किसी ने न्यायपूर्वक उपार्जन की है वह उसकी है और उससे जबर्दस्ती छीनने का

किसी को न्यायानुसार अधिकार नहीं प्राप्त होता । यदि वह वस्तु कोई उससे ज़बर्दस्ती छीनता है और इस विचार से छीनता है कि उसके स्थान पर हम उस वस्तु के स्वामी बन कर उससे लाभ उठायें, तो निस्सन्देह उसका यह कार्य नीति और न्याय की दृष्टि से अनुचित है और लोक में ऐसा करना डाका डालना और निन्दनीय माना जाता है। दूसरे का धन ज़बर्दस्ती से छीनना डाका है, लेकिन किसी अपराध के दंड-स्वरूप या अन्य राजकीय कारण से यदि राजा किसी प्रजा-जन का सर्वस्व छीन लेता है तो वह डाका नहीं कहा जाता बल्कि उस कार्य के लिए उस राजा के न्याय की सराहना की जाती है। युद्ध के समय शत्रुसेना को निर्बल बनाने के अभिप्राय से उसकी रसद-पानी तक छीन लेना या नष्ट कर डालना सदा सब काल से न्यायसंगत कार्य माना जाता है। ऐसे कार्य को कोई डाकाजनी नहीं बताता। सच पूछिये तो जिस बादशाह ने अपने जीवनकाल में बहुत सी लड़ाइयां लड़ी हैं और उनके द्वारा अपना राज्य बढ़ाया है वह एक सब से बड़ा डाकू है। ऐसी ही बात उस डाकू सरदार ने विजयी सिकन्दर से कही थी जब सिकन्दर उसे डाके के अपराध में दंड देने जा रहा था। परन्तु यह सब होने पर भी राजा डाकू नहीं समझा जाता इसका कारण यही है कि वह जो कुछ भी करता है वह अपने वैयक्तिक स्वार्थ के निमित्त नहीं, बल्कि कुमार्गियों से दंड-स्वरूप धन छीन कर वह अपनी समस्त प्रजा के हित के लिए उस धन का प्रयोग करता है। तब स्पष्ट ही है कि यदि कोई देश-रक्षा और धर्म-रक्षा के लिये आवश्यकता पड़ने पर डाका डालता है और वह निजी कार्य के

लिए नहीं बल्कि जाति के हित के लिए ऐसा करता है तो चाहे उससे बड़ा डाकू (राजा) उसे दंड ही क्यों न दे और राजा का दंड देना उचित भी क्यों न हो, किन्तु उस व्यक्ति का डाका डालना नैतिक दृष्टि से कदापि पाप-कर्म नहीं ठहराया जा सकता।

कार्यक्षेत्र में पदार्पण

दादाजी कोनदेव शिवाजी को जागीर का काम तो सौंप ही चुके थे, परन्तु उनका सदा यही ध्यान रहता था कि शिवाजी आगे चल कर महा वीर बनें। इसी से उन्हों ने व्यूह-रचना भी उन्हें अच्छी तरह सिखा दी थी। बाल्यकाल के शिवाजी के अद्भुत कर्मों को देख कर दादाजी प्रायः उनकी माता से कह उठते थे कि, "जीजी ! इस शिवा के कारण तू संसार में बहुत कुछ यश लाभ करेगी।" जागीर सम्बन्धी कामों की शिक्षा उन्हें दी जाने लगी और धार्मिक शिक्षा का भार सुयोग्य पंडितों के ऊपर सौंपा गया था। धर्म का प्रभाव शिवाजी पर इतना पड़ा था कि उन्होंने कई बार इस असार संसार को छोड़ कर सन्यासी होने का विचार किया था, पर गुरुजनों के कहने से रुक गये थे। जब शिवाजी को अन्य कामों से फुर्सत मिलती थी तब दादाजी उन्हें अपने साथ ले जागीर में घुमाते थे। प्रजा की अवस्था उनकी आंखों दिखाते हुए दादाजी शिवाजी से यह कहते थे कि देखो महाराष्ट्र की प्रजा की कैसी दुर्दशा है। मुसलमानों के राक्षसी अत्याचारों ने प्रजा की कैसी गति बना दी है। मुसलमान बने हुए हिन्दुओं को दिखा कर दादाजी यह बताते थे कि देखो अपने पुरखों के धर्म को त्याग कर ये

लोग किस तरह म्लेच्छों के साथ भोजनादि का व्यवहार करके विधर्मी बन अपने पूर्वजों के हिन्दू नाम पर कालिमा पोत रहे हैं। यवनों द्वारा तोड़े हुए मन्दिरों और उनके सामान से बनी हुई मसजिदों को दिखा कर दादाजी शिवाजी को यावनी अत्याचारों का पूरा परिचय देते थे। इस प्रकार वर्षों तक दादाजी की शिक्षा-दीक्षा के भीतर रह कर शिवाजी के हृदय में यवनों के अत्याचारों के प्रति पूरी घृणा तो पैदा ही हो चुकी थी साथ ही युवावस्था प्राप्त होने के पूर्व ही उन्होंने मावला लोगों तथा पहाड़ी डाकू सर्दारों का एक भारी संगठन कर लिया था। संगठन करने में तो शिवाजी एक ही थे। जो कोई भी उनके संसर्ग में पड़ जाता उसे वे अपने बुद्धि-कौशल और सद्बर्ताव से अपने बश में कर लेते थे। इस प्रकार धीरे धीरे समस्त महाराष्ट्र की हिन्दू जनता वीर शिवाजी के संगठन में सम्मिलित हो गई थी।

तोरण दुर्ग पर अधिकार

सब कुछ सामान तो ठीक हो गया लेकिन जब तक कोई दृढ़ दुर्ग हाथ में नहीं आता तब तक शक्ति कैसे दृढ़ हो सकती है, यह सोच शिवाजी किसी सुदृढ़ दुर्ग लेने की चिन्ता में पड़ गये। उस समय शिवाजी के सलाहकार मुख्यकर तीन आदमी थे। प्रथम देशमुख बाजीफसलकर और दूसरे दो जैमीन्दार यशजी कंक तथा तानाजी मूलसरे। इन तीनों ही पर शिवाजी का हार्दिक विश्वास था। पूना की जागीर में कोई दुर्ग नहीं था इसलिये शिवाजी की दृष्टि तोरण के दुर्ग की ओर गई जो अड़ोस-पड़ोस के किलों में बहुत मज़बूत

समझा जाता था। तोरण दुर्ग पूना के दक्षिण-पश्चिम भाग में २० मील की दूरी पर था जिसका मार्ग बहुत कठिन था; परन्तु शिवाजी को मावलों की सहायता से दुर्ग के सब मार्ग ही नहीं विदित होगये थे बल्कि उन्होंने किसी न किसी तरह स्वयं दुर्ग के अध्यक्ष को भी मिला लिया था। दुर्ग के अध्यक्ष के मिल जाने के कारण तोरण का सुदृढ़ दुर्ग सन् १६४६ ई० में बिना किसी प्रकार की लड़ाई के ही वीर शिवाजी के हाथ आगया। इस दुर्ग की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि एक तो इसका मार्ग दुर्गम था और दूसरे यह ऐसी पहाड़ी पर स्थित था कि यहां से थोड़े ही योद्धा बड़ी भारी सेना से लोहा ले सकते थे। इतिहास में तोरण दुर्ग लेने की घटना चिरस्मरणीय रहेगी। यह दुर्ग उन दिनों बीजापुर राज्य के अधिकार में था। यह दुर्ग लेने के समय शिवाजी की अवस्था कुल १९ वर्ष की ही थी। दुर्ग बीजापुर का है और बीजापुर राज्य की नौकरी हमारे पिता करते हैं तथा अभी संगठन का प्रारम्भ ही है, यदि प्रारम्भ में ही बीजापुर जैसे सुदृढ़ राज्य से मुठभेड़ हो जायगी तो कार्य में बड़ी बाधा उपस्थित हो सकती है यही सब सोच कर शिवाजी ने बीजापुर से टक्कर बचाने की एक चाल निकाली। उन्होंने बीजापुर दरबार में अपने वकील भेजे कि वे जाकर नवाब को यह समझावें कि तोरण दुर्ग पर रियासत के नौकर शाहजी के पुत्र शिवाजी का अधिकार रहने से राज्य का ही लाभ है। उनके द्वारा नवाब से यह भी निवेदन किया कि राज्य के ही लाभ के विचार से मैंने किले पर अधिकार किया है। साथ ही पहले जागीरदारों की अपेक्षा दूना लगान

देने का भी इकरार किया। उधर शिवाजी के वकील तो बीजापुर दरबार में पहुँच कर शिवाजी की उक्त प्रार्थना नवाब के सामने पेश करने के ढंग निकाल रहे थे इधर शिवाजी भी हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं थे। ये उस किले को सुदृढ़ करने और सेना बढ़ाने में लगे हुए थे। नवाब ने वकीलों द्वारा शिवाजी की दर्खास्त सुन तो ली लेकिन उसका ध्यान उस समय कर्नाटक की अराजकता की ओर लगा हुआ था इस लिये, और कुछ जानबूझ कर भी उसने उत्तर देने में देर कर दी। लेकिन वह देरी शिवाजी के लिए बड़ी हितकर सिद्ध हुई। सौभाग्यवश किले के भीतर बहुत सा संचित द्रव्य भी शिवाजी के हाथ लग गया इससे उन्होंने बहुत से अस्त्र शस्त्रादि खरीद डाले और अपनी छोटी सी सेना में अधिक योद्धाओं की भर्ती करने लगे। इतना ही नहीं उसी धन से उन्होंने तोरण से तोन मील दूरी पर महोबद पहाड़ी पर एक और सुदृढ़ दुर्ग बनवाया जिसका नाम रामगढ़ रखा जो अन्त तक शिवाजी की राजधानी रहा। एक दुर्ग सन् १६४७ ई० में अर्थात् तोरण लेने के एक वर्ष के भीतर ही बन कर तैयार हो गया था।

शिवाजी के इन कार्यों से बीजापुर के नवाब बड़े रुष्ट हुये और शिवाजी के नाम परवाने रवाना किये कि वे अपने ऐसे कार्यों से हाथ खींच लें। साथ ही नवाब ने उनके पिता शाहजी से भी शिवाजी के इस कार्य की कैफियत मांगी। शाहजी ने कर्नाटक से नवाब को यह जवाब लिख भेजा कि, "यह कार्य मेरे बेटे ने मेरी राय लिये बिना ही किया है, लेकिन मैं और मेरे सम्बन्धी दरबार के शुभचिंतक

हैं इसलिये निश्चय है कि शिवाजी ने दरबार और जागीर की भलाई के लिए ही यह कार्य किया होगा" इधर शाहजी ने दादा कोनदेव को भी पत्र लिख कर शिवाजी के कार्य पर अप्रसन्नता प्रकट की और उसके लिए उनसे जवाब तलब करते हुए भविष्य में ऐसा न करने देने की ताकीद की। तदनुसार दादाजी ने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करते हुए शिवाजी को समझाया बुझाया, किन्तु जो भाव उन्होंने अति बाल्यावस्था में ही शिवाजी के हृदय में भर दिया था वह कैसे निकाला जा सकता था। जननी जन्म-भूमि और अपने प्यारे हिन्दू धर्म के उद्धार का जो दृढ़ संकल्प शिवाजी ने कर रखा था उससे विरत होने से उन्होंने साफ इनकार कर दिया और दादाजी को भी इस पर चुप रहने के सिवा और कुछ नहीं सुझाई पड़ा। परन्तु एक ओर बाप की आज्ञा और दूसरी ओर धर्म और हिन्दू राज्य स्थापित करने की प्रबल इच्छा—इन दोनों परस्पर विरुद्ध बातों के फेर में पड़ने से शिवाजी को कुछ चिंता अवश्य होगई। इसी से उन्होंने अपनी स्त्री से इस विषय में सम्मति ली। उनकी प्यारी स्त्री ने कहा कि "स्वामिन्! स्त्रियों की सम्मति ठीक नहीं होती, क्योंकि उनकी बुद्धि बहुत कम होती है। परन्तु जब आप सम्मति चाहते ही हैं तो मेरी तुच्छ राय में तो गो ब्राह्मण और धर्म की रक्षा करना पिता की आज्ञा मानने से अधिक उत्तम है।" इसके सिवा उस देवी ने यह भी कहा कि, "पिताजी (शाहजी) यहां से दूर हैं। उन्हें क्या पता है कि इस समय इस इलाके पर कौन कौन सी विपत्ति पड़ रही है। यदि वे भी यहां होते तो ऐसी आज्ञा कभी न देते प्रत्युत आपको

इस शुभ कार्य्य में साहाय्य प्रदान करते।" धन्य हो देवी धन्य! तुम जैसी देवियों से ही तो हिन्दू जाति का मुख आज तक उज्वल बना हुआ है। स्त्री के मुख से ऐसी साहसपूर्ण बात सुन कर शिवाजी और भी दृढ़प्रतिज्ञ हो गये और अपने पवित्र कार्य्य को छोड़ने के लिए किसी तरह भी तैयार नहीं हुए। कुछ ही समय बाद दादाजी कोनदेव की अन्तिम घड़ी आ पहुंची और उन्होंने मृत्युशय्या पर पड़े-पड़े शिवाजी को बुला कर यह उपदेश दिया—"पुत्र शिवाजी! लो मैं तो इस संसार को त्याग रहा हूं और दुःख है कि तुम्हारे अद्भुत कार्य्यों को देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त न होगा। लेकिन देखना तुम स्वतन्त्र होने की चेष्टा का त्याग मत करना। गौ, ब्राह्मण और प्रजा की रक्षा में लगे रहना। हिन्दुओं के देव-मन्दिरों की यवनों के हाथों से रक्षा करना।" बस फिर क्या था शिवाजी के बाल्यकाल के शिक्षक दादाजी ने भी जब संसार से आंख मूंदते समय धर्मरक्षार्थ आज्ञा दे दी तब उन्हें कौन रोक सकता था? निदान उन्होंने इसे ईश्वरी आज्ञा समझा और इसे पूरा करने के लिए पहले से भी अधिक दृढ़ संकल्प कर लिया।

किलों पर अधिकार

दादाजी की मृत्यु से शिवाजी को महान् शोक हुआ, पर शीघ्र ही उन्होंने दादाजी की आज्ञा का पालन करने की ओर ध्यान दिया। दादाजी की मृत्यु के उपरान्त जागीर के प्रबन्ध का कुल भार शिवाजी के ऊपर आ पड़ा और उसी में उनका अधिक समय व्यतीत होने लगा। उनकी जागीर उन्नत अवस्था में थी। उन्होंने अवसर मिलते ही अपनी जागीर के लोगों को बुला

कर अपना उद्देश्य समझाना शुरू किया और वे लोग भी सहर्ष शिवाजी के शुभ उद्देश्य की पूर्त्ति में सहायक बनने की प्रतिज्ञा करने लगे। उधर शाहजी को दादाजी की मृत्यु का हाल मालूम नहीं हो पाया था कि उन्होंने कर्नाटक से दादाजी के पास कुछ धन लाने के लिए अपने दूत भेजे। शिवाजी के पास सेना आदि बढ़ाने के लिए भी काफी रकम नहीं थी तो वे शाहजी को कहां से धन भेजते। इसीसे उन्होंने अपने पिता को लिख भेजा कि इस निर्धन इलाके की आय खर्च ही भर को काफी होती है बचत की तो कोई गुंजाइश ही नहीं है। शाहजी भी इस उत्तर से चुप रहे। शिवाजी की सारी जागीर के भीतर दो ही आदमी बचे थे जो अब तक शिवाजी के वशीभूत नहीं हुए थे। एक तो थे चाकन के किले के किलेदार भिरङ्गा-जी और दूसरे थे सोपा जिले के अध्यक्ष बाजी मोहिते। इनमें से पहिले सज्जन तो शिवाजी के वश में सहज ही आगये। बाजी मोहिते को अधीन करने की चिन्ता ही में थे कि गोंदाने या कोंडाने का किला अनायास ही शिवाजी के हाथ आ गया। इसका किलेदार एक मुसलमान था जिसने एक बड़ी रकम घूस में लेकर किले को शिवाजी के हाथ सौंप दिया। यह किला अन्य किलों से बड़ा और युद्ध की दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त स्थान पर था। इस दुर्ग में घुसने के वास्ते कोई भी सीधा मार्ग नहीं है। शिवाजी ने इसका नाम 'सिंहगढ़' रखा और अब तक वह इसी नाम से प्रसिद्ध है। यह अति प्राचीन और सुदृढ़ दुर्ग है। इसके हाथ आने से शिवाजी को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि इसके आस पास जिन मावला जाति के लोगों की अधिकता थी वे अब पूर्णरूप से शिवाजी के भक्त हो

गये। वैसे तो मावला जाति के लोग किसानी का धंधा किया करते थे, परन्तु जब उनके देश पर कोई बाहरी शत्रु आक्रमण करता था तब ये सब एकत्र होकर जी-होमकर उससे युद्ध किया करते थे। मावला जाति वालों के पूर्णरूप से वश में हो जाने के पीछे शिवाजी की सेना भी बहुत अधिक शक्ति-सम्पन्न हो गई।

सोपा के बाजी मोहिते ने किसी प्रकार शिवाजी की बात नहीं मानी, यद्यपि उससे शिवाजी को बहुत बड़ी आशा थी, क्योंकि वह उनकी सौतेली मां का भाई था। जब मोहिते ने शाहजी की आज्ञा के बिना हिसाब चुकाने से साफ इनकार कर दिया तब शिवाजी ने एक रात को अपने मावले वीरों सहित उसके ऊपर छापा मारा और मोहिते को उसके साथियों समेत कैद कर लिया। मोहिते को तो उन्होंने अपने पिताजी के पास कर्नाटक को रवाना कर दिया और उसके आदमियों में से जिन्होंने उनकी नौकरी करना स्वीकार किया उन्हें अपने पास रख बाकी आदमियों को भी अपने पिता के पास भेज दिया।

इसके बाद शिवाजी की दृष्टि पुरन्धर के बड़े किले पर पड़ी। यह दुर्ग पूना और बारामती के रास्ते में पड़ता था। इस समय तक सूपा के सिवा बारामती और इन्द्रपुर भी शिवाजी को जागीर में शामिल हो गये थे। इसलिए पुरंधर के सुदृढ़ दुर्ग पर अधिकार हुए बिना उनका मार्ग निष्कण्टक नहीं हो सकता था। इस दुर्ग का अध्यक्ष एक ब्राह्मण था जिसकी हार्दिक सहानुभूति बहुत पहिले ही से दादाजी के साथ थी। परन्तु वह कभी कभी बीजापुर के नवाब के विरुद्ध उपद्रव कर बैठता था इसीसे नवाब ने उस पर क्रुद्ध होकर तोप

के मोहड़े पर उसे उड़वा दिया। उसके तीन बेटे थे जिनमें बड़े ने शाही हुक्म आने के पहिले ही अपने पिता की जगह संभाल ली और किलेदार बन बैठा। दोनों छोटे बेटे उससे लड़ पड़े और उन्होंने शिवाजी से सहायता मांगी। शिवाजी उन लड़कों के कहने से किले के भीतर पञ्चायत करने को गये। उनके साथ उनके कई सर्दार भी गये थे। किले के भीतर जाने पर शिवाजी को मालूम हुआ कि वहां के आदमियों की हार्दिक इच्छा यह है कि स्वयं शिवाजी ही इस किले को अपने अधिकार में कर लें। जब तीनों भाइयों से रात में बहुत देर तक शिवाजी की बातें होती रहीं तब बड़ा भाई सोने का चला गया। शिवाजी ने अवसर को उपयुक्त समझ दोनों भाइयों को अपने अधिकार में कर तीसरे को कैद कर लिया। फिर दुर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु उन तीनों भाइयों के साथ उन्होंने बहुत ही अच्छा वर्ताव किया। किले के बदले बहुत सी जागीर देकर उन्हें अपनी सेना में भर्ती कर लिया। ग्रांट डफ आदि इतिहास-लेखकों ने शिवाजी के इस कार्य को विश्वासघात कह कर उनको बड़ी निन्दा की है। परन्तु हमारी समझ से तो शिवाजी के इस आचरण की निन्दा करनी ठीक नहीं जान पड़ती। कारण, एक तो वह किला बीजापुर राज्य का था जिसके किले और स्थानों पर शिवाजी उस समय अधिकार करने में लगे ही थे, दूसरे, तीनों भाई आपस में किलेदार बनने को लड़ रहे थे यद्यपि उनके पिता की मृत्यु होने के उपरान्त बीजापुर के नवाब ने तीन में से किसी को भी उस समय तक किलेदार नियुक्त नहीं किया था। फिर उन तीनों भाइयों के पारस्परिक कलह से अनिष्ट की संभावना जान किले के सब-

लोग भी यही चाहते थे कि शिवाजी ही उस पर अपना अधिकार कर लें। तभी तो उन्होंने शिवाजी के विरुद्ध उस समय एक शब्द भी नहीं कहा जब उन्होंने तीनों भाइयों को कैद करके किले पर अधिकार किया था। फिर सब से अधिक विचारणीय बात यह है कि अगर शिवाजी ने किले पर अपना अधिकार न कर लिया होता तो तीनों भाई आपस में ही कट मरते और कुछ भी हाथ न आता। किन्तु शिवाजी ने किला लेकर सब टंटा ही तोड़ दिया और उसके बदले में न केवल उन्हें बहुत सी जागीर ही दी, बल्कि उन्हें अपनी सेना में भी भर्त्ती कर लिया जहां उन्होंने अपनी बड़ी ख्याति पैदा की। निदान दो वर्ष के थोड़े ही समय में सन् १६४८ ई० तक बिना किसी प्रकार की लड़ाई लड़े ही शिवाजी ने चाकेन और नोरा के बीच की कुल जागीर अपने अधिकार में कर ली और कई सुदृढ़ किलों के स्वामी बन बैठे।

बीजापुर से खटपट

१६ वर्ष की अवस्था से २१ वर्ष के होने तक अर्थात् दो वर्षों के भीतर ही शिवाजी ने जैसी शीघ्रता और तत्परता से बीजापुर राज्य की सीमा के किलों पर अधिकार किया वह जादू के समान था। उन किलों पर अधिकार करने के बाद अब उनका इलाका इतना बढ़ गया था कि उन्हें अपनी प्रजा का भेद लेने और इलाके के हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध उत्तेजित करने के लिए बहुत से गुप्तचर या जासूस रखने पड़े। इस काम पर कितने ही योग्य आदमी नियुक्त किये गये जो बड़ी स्वामिभक्ति के साथ अपने कर्तव्यों का

पालन करते थे। इतने अधिक किलों पर इतनी शीघ्रता से अधिकार किया गया था कि बीजापुर के नवाब को खबर तक न हुई। जिन तोरण आदि की खबर भी हुई थी उनके बारे में स्वयं शिवाजी ने ही समाचार भेज कर प्रकट कर दिया था कि राज्य की भलाई के विचार से ही ऐसा किया गया है। इसीसे बीजापुर के नवाब से अभी तक मुठभेड़ नहीं हुई। परन्तु अब दर्बार से खटपट हुए बिना नहीं रह सकती थी। सन् १६४८ ई० में एक दिन शिवाजी के दूतों ने आकर समाचार दिया कि कल्याण के हाकिम मुल्ला अहमद ने एक भारी खज़ाना राजधानी के लिए रवाना किया है जो अभी राह में है। शिवाजी ने उन विधर्मियों का खजाना लूटना अनुचित नहीं समझा जिनसे उन्होंने एक प्रकार से युद्ध छेड़ रखा था और जिनका सर्वनाश करने की वे दृढ़ प्रतिज्ञा ही किये हुए थे। वे झट सूपा से ३०० सवारों और थोड़े से मावला वीरों को लेकर खजाने पर टूट पड़े और उसे लूट कर रामगढ़ ले आये। बीज़ापुर के नवाब ने अभी इस खज़ाने के लूटे जाने का समाचार सुना भी नहीं था कि उसे यह भी मालूम हुआ कि शिवाजी ने कंगोरी, टोग, टिकोना, भोरुप, कारी, लोहगढ़ आदि दुर्गों पर भी अधिकार कर लिया है। इतना ही नहीं शिवाजी ने उत्तरी कोंकण प्रदेश पर भी अधिकार जमा लिया जहाँ उन्हें बहुत सा धन मिला। अब उनके पास सैन्यशक्ति बढ़ाने के लिए धन की कुछ भी कमी नहीं रह गई। उधर कल्याण के सूबेदार का खजाना ही नहीं लूटा गया बल्कि स्वर्गीय दादाजी कोनदेव के एक शिष्य आवाजी सोनदेव ने कल्याण पर चढ़ाई करके मुल्ला अहमद को भी कैद कर लिया।

इससे उस इलाके के सभी किलों पर उसका अधिकार होगया। शिवाजी यह सुसमाचार पाते ही कल्याण गये और वहां उन्होंने सोनदेव के इस वीरोचित कार्य की बड़ी सराहना की तथा उन्हें कल्याण का सूबेदार नियुक्त किया। मुल्ला अहमद को सोनदेव ने शिवाजी के हाथों सौंप दिया। लगान का प्रबन्ध उन्होंने फिर प्राचीन रीति के अनुसार किया और जो जायदादें पहिले देवस्थानों तथा मन्दिरों की थीं लेकिन अत्याचारी यवनों ने छीन ली थीं, उन्हें फिर देवमन्दिरों के सुपुर्द कर दिया। शिवाजी के इस सुप्रबन्ध का इलाके के हिन्दुओं के हृदय पर ऐसा उत्तम प्रभाव पड़ा कि यवन अत्याचारों से त्रस्त लोग शिवाजी को हिन्दू धर्म का रक्षक समझ उनसे अत्यन्त प्रेम करने लगे। कल्याण के सूबे से मिला हुआ एक यवन सूबेदार का सूबा था जिससे शिवाजी को सदा भयभीत रहना पड़ता था। इसलिये उस भय को दूर करने के विचार से उन्होंने उसके निकट ही भर्दारी और लङ्गानी नाम के दो किले बनवा दिये। उधर शिवाजी ने मुल्ला अहमद का उचित सत्कार करके बीजापुर भेज दिया जहां जाकर उसने शिवाजी के सब कारनामें बताये। बीजापुर के नवाब का क्रोधानल भड़क उठा और उसे शिवाजी का दमन करने की बड़ी चिन्ता हो गई। परन्तु उसने सोचा कि यह सब कार्य हो न हो शाहजी भोंसले की राय से उसका लड़का कर रहा है और शाहजी का इस समय कर्नाटक में बड़ा जोर है। कहीं ऐसा न हो कि शिवाजी के विरुद्ध कोई काररवाई की जाये और शाहजी अपने बेटे की सहायता करने लगे। इसलिये नवाब ने शिवाजी से पहिले शाहजी को ही दंड देने का विचार किया।

शाहजी की गिरफ्तारी और कैद

शाहजी के साथ मुहद्दल का नायक बाजी घोरपड़े नाम का एक व्यक्ति था। उसके पास नवाब ने एक गुप्त पत्र भेजा कि धोखे से शाहजी को गिरफ्तार करके हमारे पास भेज दो। बाजी नवाब का पत्र पाकर भविष्य की उन्नति की आशा से फूल कर कुप्पा बन गया और झट उसने स्वामिभक्ति का परिचय देने के वास्ते अपने घर पर एक उत्सव करके शाहजी को भी उसमें निमन्त्रित किया। शाहजी को क्या पता था कि तनिक से स्वार्थ के लिए उन्हीं की जाति का एक व्यक्ति उनके साथ विश्वासघात करने जा रहा है। वे निमंत्रण में साधारण रूप में सम्मिलित हुए और भोजन करते समय ही घोरपड़े के आद-मियों ने उन्हें बन्दी बना लिया। विश्वासघातक घोरपड़े ने चुपके से शाहजी को उसी अवस्था में बीजापुर के नवाब के पास भेज दिया। शाहजी के दर्बार में पहुंचते ही नवाब ने उनसे साफ शब्दों में कह दिया कि तुम हमारा नमक खाते हो और तुम्हारा पुत्र शिवाजी हमारे किलों और राज्य के स्थानों को छीन रहा है। निश्चय ही यह सब तुम्हारी राय के बिना नहीं हुआ है। लेकिन अगर उसने तुम्हारी राय के बिना ही ऐसा किया है तो भी तुम्हारी भलाई अब इसी में है कि तुम उसे लिखो कि वह छीने हुए क़िले और स्थान राज्य को लौटा दे और भविष्य में फिर कभी ऐसा करने का साहस न करे। शाहजी ने बहुतेरी सफाई दी और निवेदन किया कि मेरे पुत्र पर मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है। उसने जो कुछ भी किया है सब अपने मन से किया है। साथ ही उन्होंने शिवाजी को भी

लिखा लेकिन जब उनका कोई उत्तर नहीं आया तब शिवाजी को राह पर लाने के लिए नवाब ने हुक्म दिया कि शाहजी काल-कोठरी में बन्द कर दिया जाय और एक छोटा सा छेद हवा आने जाने के लिए रख कर उसका द्वार भी बन्द कर दिया जाय। यदि नियत तिथि के भीतर शिवाजी आत्म-समर्पण न करे तो यह छेद भी बन्द कर दिया जाय जिसमें शाहजी दम घुटने से मर जाय।

उधर जब शिवाजी को पिता की ऐसी दुर्गति का समाचार मिला तो उनकी चिन्ता का कोई पारावार नहीं रहा। अगर बीजापुर के शाह को आत्मसमर्पण करते हैं तो इतने दिनों की कमाई पर पानी फिरता है और यदि नहीं करते हैं तो पूज्य पिता जी की दुर्गति होती है, ऐसी दशा में क्या कर्तव्य है, इसी की उधेड़-बुन में शिवाजी बेतरह पड़े हुए थे कि पितृ-भक्ति ने एक बार उन्हें आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार किया। परन्तु जब उनका ऐसा विचार उनकी वीरपत्नी श्रीमती सुई-बाई को मालूम हुआ तब उन्होंने अपने पति को यवनों के माया-जाल से बचने के लिए सचेत किया और कहा कि आप अगर आत्मसमर्पण कर देंगे तो क्या नवाब आपके पूज्य पिताजी को प्राणदान देगा, इसका आपको विश्वास है? यवन बड़े कपटी और स्वार्थपरायण हैं। वह आपको अपने पञ्जे में पाकर सदा के लिए अपने राज्य को निष्कण्टक बनाने के हेतु निश्चय ही पिताजी के साथ ही आपको भी मरवा डालेगा। इसलिये उसके धोखे में न फँस कोई स्वतन्त्र उपाय करने ही में भला है। अपनी प्राणप्रिया की समयोचित चेतावनी से शिवाजी की आंखें खुल गयीं और उन्होंने आत्मसमर्पण का विचार त्याग

दिया। फिर उन्होंने सोचा कि यदि दिल्ली के बादशाह से सहायता ली जाय तो पिताजी का सङ्कट से त्राण हो सकता है। उस समय शाहजहां दिल्लीश्वर थे और अब तक मुगलों से किसी तरह की अनबन नहीं थी इस वास्ते शाहजहां से सहायता मिलने की भी उन्हें पूरी आशा थी। निदान शिवाजी ने पत्र लिख कर शाहजहां से अपने पिता के उद्धार की प्रार्थना की जिसे बादशाह ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं, शिवाजी को पांच-हजारी का पद देने का विचार भी उन्होंने प्रकट किया। परन्तु इधर शिवाजी केवल उन्हीं के भरोसे नहीं बैठे थे। बीजापुर के आदिलशाही दर्बार में एक ब्राह्मण मंत्री मुरारपन्त थे। वे बड़े विशाल हृदय के थे और शिवाजी से आन्तरिक सहानुभूति भी रखते थे। शिवाजी ने उनके द्वारा भी पिता को मुक्त कराने के लिए उद्योग किया और मुरारपन्त ने शिवाजी की प्रार्थना पर पूरा ध्यान दिया। एक ओर तो मुरारपन्त नवाब को सलाह देने वाले थे और दूसरी ओर स्वयं नवाब को यह पता चल गया था कि शिवाजी की प्रार्थना शाहजहां ने स्वीकार कर ली है। कहीं ऐसा न हो कि दिल्ली की शाही सेना हमारे राज्य पर धावा बोल दे और शिवाजी उससे मिल कर अपने किले और इलाके को उसके सुपुर्द कर दे। उस दशा में शाही सेना हमारे घर के भीतर होगी जिससे राज्य की रक्षा असम्भव हो जायगी। यही सब सोच कर मुरारपन्त की सलाह से शाहजी को छोड़ देने में ही भलाई समझी गई और शाहजी कालकोठरी से सन् १६५२ ई० में मुक्त कर दिये गये। वे छोड़ तो दिये गये, लेकिन राजधानी में ही नजरबन्द रखे गये। फिर शिवाजी ने शाहजहां की अधीनता में पड़ना उचित नहीं समझा।

शाहजी कालकोठरी से तो छोड़े गये मगर चार वर्ष तक उन्हें दर्बार में हाज़िर रहना पड़ा, इससे शिवाजी भी कुछ और अधिक कार्य करने से लाचार थे। 'कण्टकेनैव कण्टकम्' की नीति से उन्होंने अपने पिता को कारागार-मुक्त तो करा लिया, लेकिन फिर भी यह भय बना ही रहा कि कहीं कुछ काम किया जाय और ऐसा न हो कि नवाब क्रुद्ध हो पिताजी के प्राण ले ले। इसीसे और अधिक छेड़छाड़ न कर शिवाजी चार वर्ष तक (१६४८—५२) कोंकण प्रदेश के महर ग्राम में रहे। यहीं पर वे अपना धन-बल और जन-बल बढ़ाते हुए पिताजी को पूर्णरूप से स्वतन्त्र कराने के उपाय सोचते रहे। उधर १६५३ ई० में कर्नाटक में भारी विद्रोह उठ खड़ा हुआ। शाहजी के वहां से चले आने के पीछे से ही वहां ज़मींदारों और जागीर-दारों में अपनी अपनी प्रधानता के लिए भारी झगड़े खड़े हो गये थे। जब वहां की अशान्ति किसी तरह न मिटायी जा सकी, तब बीजापुर दर्बार ने फिर शाहजी को ही उसके दमन के लिए कर्नाटक भेजा। किन्तु साथ ही उनसे इस बात की कड़ी ताकीद कर दी कि बाजी घोरपड़े से बदला लेने का विचार भूल कर भी मत करना। शाहजी ने कर्नाटक पहुंच कर विद्रोह का दमन तो किया, लेकिन लड़ाई लड़ते समय उनके बड़े बेटे शम्भाजी शत्रु की गोली के शिकार हो गये। कर्नाटक पहुंच कर शाहजी दर्बार के भय से स्वयं तो इस विषय में कुछ न कर सके, पर अपने पुत्र शिवाजी को एक पत्र लिखा कि, "शिवा! यदि मेरा पुत्र है तो बाजी से बदला अवश्य लेना।" वीर शिवाजी पिताजी द्वारा समर्पित एक वीरकार्य करने के लिए बड़े प्रसन्न हुए। ज्येष्ठ पुत्र के बध के कारण शाहजी

चिन्तित से रहने लगे जिससे कर्नाटक में फिर कुछ अशान्ति पैदा हो चली। दर्बार को सन्देह हुआ कि शाहजी अपने बेटे शिवाजी को मदद दे रहे हैं, अतएव शिवाजी को दबाने का पूरा प्रबन्ध किया जाने लगा।

शिवाजी को पकड़ने का निष्फल प्रयत्न

बीजापुर दर्बार ने शाहजी को जब कर्नाटक भेज दिया तभी से वह गुप्तरूप से इस प्रयत्न में भी लगा रहा कि यदि किसी तरह शिवाजी गिरफ्तार कर लिया जाय तो सब कंटक ही मिटे। शिवाजी को गिरफ्तार कराने का बीड़ा उठाने को एक नीचात्मा हिन्दू मिल गया जिसका नाम बाजी शामराजी था। शामराजी ने जयचन्दी नीति से काम लिया और सोचा कि यदि शिवाजी को पकड़ा देंगे तो बड़ी भारी जागीर मिलेगी और आदिलशाह सदा के लिए हमारे रक्षक हो जायेंगे। इसीसे उसने फारघाट नामक स्थान में पहुंच कर डेरा जमाया और वहीं से शिवाजी को फँसाने की ताक में बैठा। यह स्थान उस स्थान से बहुत दूर न था जहां पर शिवाजी उस समय निवास करते थे। परन्तु प्रबल-शक्ति आदिलशाही से शत्रुता मोल लेनेवाले और भविष्य में विशाल हिन्दू राज्य की स्थापना का विचार करने वाले शिवाजी भी गाफिल नहीं थे। वे एक अत्यन्त सुरक्षित स्थान में तो रहते ही थे, साथ ही उनका गुप्तचरों का प्रबन्ध भी प्रशंसनीय था। उस स्थान पर बैठे-बैठे उन गुप्तचरों द्वारा वे इलाके भर की घटनाओं का रत्ती रत्ती भरका समाचार जानते रहते थे। बाजी शामराजी का बीजापुर जाना और

वहां से चन्द्रराव की जागीर में होकर फारघाट में जाकर डेरा डालना इन गुप्तचरों से छिपा नहीं रहा। शिवाजी को उस पर सन्देह तो कुछ पहिले ही से हो गया था लेकिन गुप्तचरों की रिपोर्ट पर तो वह सन्देह और भी दृढ़ हो गया। तब शिवाजी ने उसका भेद लेना शुरू किया और जब पूर्णरूप से उसका मनोरथ जान लिया तब एक रात को शिवाजी अपने मावला वीरों को साथ ले एकाएक फारघाट के निकट जा पहुंचे। वहां से जब उन्होंने पता लगा लिया कि शामराजी की सेना गाफिल सो रही है तब मावला योद्धाओं ने उस पर आकस्मिक आक्रमण कर दिया। बाजी की सेना भी उठ खड़ी हुई और लड़ने लगी, किन्तु शीघ्र ही बाजी जान लेकर भागा और किसी तरह बच कर बीजापुर पहुंचा। उसके मुख से सब समाचार सुन नवाब की आशालता पर तुषार पड़ गया और उधर शिवाजी विजयी हो अपने निवास-स्थान महर को लौट गये।

शामराजी के पापपूर्ण प्रयत्न में जावली के जागीरदार चन्द्रराव ने भी सहायता की थी और उसकी सेना को अपनी जागीर के भीतर होकर जाने दिया था। चन्द्रराव प्रकट में तो शिवाजी से प्रेमभाव दिखाता रहता था पर भीतर ही भीतर उनके उत्कर्ष से जला जाता था इसीसे वह आदिलशाही से मिल उनका अनिष्ट सोचा करता था। शिवाजी ने उसे अपने पक्ष में लाने का बहुतेरा उद्योग किया था लेकिन उस पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ था। इसीसे शिवाजी ने अब उसका दमन करने का विचार किया। परन्तु ऐसा करना कुछ सहज नहीं था, क्योंकि चन्द्रराव के पास भी कुछ कम सैन्यशक्ति

नहीं थी। इसलिये पहिले तो शिवाजी ने उसे लिखा कि शाम-राजी अपनी सेना सहित बीजापुर की ओर गया है। मैं उसका पीछा करना चाहता हूं, इसलिये मेरी सेना आपकी जागीर के भीतर से होकर जायेगी। उसके लिए अन्नादि का प्रबन्ध आप कर देना। परन्तु अन्नादि का प्रबन्ध कौन करता है, चन्द्रराव ने जवाब भेजा कि जागीर के भीतर होकर सेना न जाने पावेगी। इस पर शिवाजी ने उसका अन्त करने का निश्चय कर लिया। पर जैसा पहिले कहा गया है उसकी शक्ति भी कुछ कम न थी इससे इस समय उससे युद्ध करना उचित नहीं समझा गया और भेदनीति से काम लिया गया। रघुबल्लाल नामक एक ब्राह्मण कई मावलों के साथ जावली भेजे गये। उन्होंने चन्द्रराव से कहा कि शिवाजी आपके यहां विवाह-सम्बन्ध करना चाहते हैं। चन्द्रराव ने उनका पहिले तो खूब सत्कार किया, लेकिन पीछे उनसे पीछा छुड़ाना चाहा। अन्त में एक दिन रघुबल्लाल ने बातचीत करते समय धोखे में चन्द्रराव और उसके सगे भाई का शस्त्राघात से बध कर डाला। पीछे रघुबल्लाल वहां से भाग कर शिवाजी के पास आया और सब समाचार कह सुनाया। समस्त मरहठा इतिहास-लेखक एक स्वर से कहते हैं कि यह कार्य शिवाजी को सूचना दिये बिना ही रघुबल्लाल आदि ने किया था इसलिये इस दगाबाजी का दोष शिवाजी के माथे नहीं मढ़ा जा सकता। पीछे शिवाजी ने जावली पर आक्रमण किया, किन्तु मन्त्री हिम्मतराव आदि बड़ी वीरता से लड़े। मंत्री मारा गया और उसके बेटे कैद कर लिये गये। फिर बसोता के दुर्गपति को हराकर कुल जावली राज्य पर अधिकार जमा लिया गया। पीछे मंत्री के

उन बेटों ने गुप्तरूप से बीजापुर दर्बार को अपनी दुर्दशा लिख भेजी और सहायता मांगी। इस पर शिवाजी ने उन्हें प्राण-दण्ड की आज्ञा दी।

राजा चन्द्रराव का राज्य हाथ आ जाने से शिवाजी की शक्ति बहुत बढ़ गई। शिवाजी ने जागीर का ऐसा बढ़िया प्रबन्ध किया और जागीर के निवासियों को अपने वर्त्ताव से इस तरह वश में कर लिया कि सब लोग इस परिवर्त्तन से सन्तुष्ट हो गये। फिर उन्होंने पड़ोस के रोहिरा दुर्ग पर आक्रमण किया। दुर्ग का अध्यक्ष बंदल था जो चन्द्रराव का मित्र था। दुर्गवालों ने जीहोमकर युद्ध किया और तब तक उन्होंने हार नहीं मानी जब तक लड़ता हुआ बन्दल मारा नहीं गया। बन्दल के मारे जाने से सेना में भारी हलचल मच गई लेकिन बन्दल के वीर सहायक बाजीप्रभु देशपांडे ने शत्रु के सामने पीठ नहीं दिखायी। वह अन्त तक लड़ता रहा और यद्यपि शस्त्रों के आघात से उसका शरीर चलनी सा हो रहा था तो भी वह सामना करते हुए अपने स्थान पर डटा रहा। उसकी ऐसी वीरता देख शिवाजी ने उसके पास अपना दूत भेज कहला दिया कि दुर्ग की रक्षा अब असम्भव है, परन्तु शिवाजी नहीं चाहते कि तुम जैसा वीर पृथ्वी से उठ जाये इस-लिये तुम आत्मसमर्पण कर दो। बाजीप्रभु ने स्वीकार कर लिया और शिवाजी ने बड़े प्रेम के साथ उसे छाती लगाया और कहा कि देखो वीर इस समय मैं पददलित भारतभूमि को विधर्मी विदेशी यवनों से स्वतंत्र करने के कार्य में लगा हूं। हिन्दूमात्र को ऐसे समय में मेरी सहायता करनी चाहिये। वीर बाजीप्रभु ने नतमस्तक हो शिवाजी से प्रतिज्ञा की कि अब

यह शरीर आप ही का है और धर्म की रक्षा में यह सेवक जीवन भर आपके साथ रहेगा। शिवाजी ने उस वीर को एक बड़ी सेना का नायक बना दिया और उसने अपनी शेष आयु शिवाजी की सेवा में बड़ी भक्ति के साथ बितायी।

फिर शिवाजी ने नये जीते हुए प्रदेशों की रक्षा के लिए कृष्णातट के विशाल पर्वत-शृङ्ग पर एक ब्राह्मण द्वारा एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया जिसका नाम 'प्रतापगढ़' रखा गया। जीते हुए स्थानों का प्रबन्ध-भार मंत्रीवर श्यामराजे पन्त को अर्पण किया गया जिन्होंने ऐसा सुप्रबन्ध किया कि १६५६ ई० में शिवाजी ने प्रसन्न होकर उन्हें पेशवा की उपाधि दी। इस तरह अपना राज्य बढ़ा कर और सेना को दृढ़ करके शिवाजी ने बीजापुर से भी अधिक शक्तिसम्पन्न और भारतव्यापी मुगल साम्राज्य की शक्ति से सामना करने का विचार किया।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है, दिल्ली के मुगल बाद-शाहों का ध्यान दक्षिण की यवन रियासतों को मिटा कर उन्हें अपने सूबे बनाने का सदा से था। परन्तु गोलकुण्डा और बीजापुर की रियासतें अब तक स्वतन्त्र बनी हुई थीं, यद्यपि कुछ कर दोनों ही रियासतें दिल्ली को देती थीं। इसी समय कंधार पर विजय पाने के पीछे शाहजहां बादशाह ने औरंगजेब को सन् १६५५ ई० में दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। उसे इन रियासतों को तोड़ कर इन्हें मुगल साम्राज्य का सूबा बनाने की बेतरह धुन सवार थी। इस समय गोलकुण्डा का नवाब कुतुबशाह था और उसका मंत्री था मीरजुमला। मीरजुमला के साथी मुहम्मद अमीन से कुछ अपराध हो गया और नवाब

ने उसे दण्ड देने का निश्चय किया। मीर जुमला को यह बात बुरी लगी और उसने शाहजहां से शिकायत की। इधर औरंगजेब ने भी शाहजहां के कान भरने में कोई कसर नहीं रखी, क्योंकि वह तो गोलकुण्डा से लड़ाई का बहाना ही ढूंढता था। शाहजहां ने एक कड़ी चिट्ठी लिखी जिससे क्रुद्ध हो नवाब ने तुरन्त मुहम्मद् अमीन को कैद करके मीर जुमला की जायदाद् जब्त कर ली। मीर जुमला भी भाग कर औरंगजेब की शरण में पहुंचा और उसके ऊपर नवाब के अत्याचार का बहाना बता औरंगजेब ने गोलकुण्डे पर आक्रमण कर दिया। परन्तु औरंगजेब तो सदा धोखेबाजी से काम लिया करता था इसलिये इस अवसर पर भी उसने अपने बड़े बेटे मुहम्मद सुल्तान को बहुत बड़ी सेना के साथ गोलकुण्डे को तो रवाना किया लेकिन कुतुबशाह को ऐसी सूचना भेज दी कि शाहजादा शादी के वास्ते अपने चचा बंगाल के सूबेदार के पास जा रहा है। कुतुबशाह धोखे में फँस गया और उसे तभी पता चला जब वह इसके शहर के द्वारों पर पहुँच गया। कुतुबशाह की हार हुई और उसे लाचार होकर औरंगजेब से संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार उसे अपने राज्य में दिल्लीश्वर के नाम का सिक्का चलाने, अपनी कन्या का विवाह औरंगजेब के जेष्ठ पुत्र के साथ करने और एक करोड़ रुपया वार्षिक कर देने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी। मीर जुमला दिल्ली बुला लिया गया जहाँ उसे मंत्री का पद दिया गया।

इसी बीच बीजापुर के नवाब मुहम्मद आदिलशाह मर गये और उनका बड़ा बेटा अली आदिलशाह गद्दी पर बैठा। मृत बादशाह से दारा शिकोह की मैत्री थी जिससे औरंगजेब पहिले

ही से चिढ़ता था। औरंगजेब ने शाह से कहला भेजा कि तुम किसी भी तरह तख़्त पर नहीं बैठ सकते हो। कारण, तुम जब दिल्ली के बादशाह का आधिपत्य स्वीकार कर चुके हो तो उनकी आज्ञा आने के पहिले ही क्योंकर सिंहासन पर बैठ गये? फिर तुम सिंहासन के अधिकारी भी नहीं हो, क्योंकि सम्राट् को तुम्हारे औरस पुत्र होने में सन्देह है। इसलिये या तो सम्राट् की आज्ञा मंगाओ या तख़्त खाली कर दो। नवाब ने न माना और औरंगजेब ने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी। आदिलशाह की सेना मुगल सेना के सामने न टिक सकी और अंत में आदिल-शाह ने संधि की प्रार्थना की तथा बहुत सा कर देने को राजी हो गया। परन्तु औरंगजेब को तो बीजापुर राज्य को नष्ट करने की चिन्ता थी। तो भी उस समय बीजापुर का भाग्य प्रबल था क्योंकि ठीक उसी समय औरंगजेब को शाहजहां की बीमारी की खबर लगी और वह नवाब से संधि कर दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

औरंगजेब की राक्षसी चाल

१६५७ ई० में शाहजहां एकाएक बीमार पड़ गये और कई दिन तक दर्बार में न आ सके। उनका बड़ा लड़का दारा शिकोह दिल्ली में ही रहकर राजकार्य में सहायता दिया करता था। उसने उनके स्थान पर राजकार्य संभाला। इस पर दर्बार के कट्टर मुसलमानों ने चारों ओर यह हल्ला उड़ा दिया कि दारा ने बादशाह को विष दे दिया और शाहजहां अब इस जहान में नहीं रहे हैं। दारा शिकोह हिन्दुओं से बड़ा प्रेम रखता था इसीसे कट्टर मुसलमान दर्बारी उससे जलते थे।

बादशाह की बीमारी की खबर पा उसके बाकी लड़के दिल्ली के लिए रवाना हुए। कट्टर मुसलमान औरंगजेब को बादशाह बनाने की चिन्ता में थे। बंगाल से शुजा चल पड़ा और उसने यह प्रसिद्ध कर दिया कि दारा ने मेरे पिता को विष दिया है उसी का बदला चुकाने जा रहा हूं। उसने स्वयं सम्राट् होने की घोषणा भी कर दी। उधर गुजरात में मुराद ने बादशाह होने की घोषणा कर दी। दारा ने शुजा की चढ़ाई का हाल सुन कर उससे सामना करने के वास्ते अपने लड़के सुलेमान शिकोह और जयपुर के राजा जयसिंह की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना भेजी। बनारस के निकट लड़ाई में शुजा की हार हुई और वह फिर बंगाल को खदेड़ा गया। इधर औरंगजेब ने दक्षिण से रवाना होने के साथ ही कई प्रकार की कुटिल चालों से काम लिया। पहिले तो उसने यह बिचारा कि यदि इस समय शिवाजी की सहायता हमें मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो। इसलिये उसने शिवाजी को लिख भेजा कि पहिले तुमने शाहजहां को जो शर्तें लिखी थीं, वे मुझे मंजूर हैं इसलिये तुम पहिले की प्रतिज्ञानुसार अपने कुछ घुड़सवारों से तो नर्मदा के दक्षिणी भाग की रक्षा करो और कुछ सेना से सम्राट् की सहायता करो। शिवाजी को उसकी चाल मालूम हो गई इसलिये लिख भेजा कि "मेरी सेना विद्रोह के कार्य में भाग नहीं ले सकती। अब मैं सहायता देने में असमर्थ हूँ।" शिवाजी से निराश हो औरंगजेब अकेला मुराद से मिला और उससे कहा कि मैं तो फकीर आदमी हूँ राज्य से मुझ से क्या काम ? दारा इसलाम धर्म से पतित है क्योंकि वह काफिर हिन्दुओं से मिला

हुआ है। इसलिये उसे और शुजा को हराकर तुम्हें गद्दी पर बिठाना चाहता हूँ। मुराद उसकी चाल में फँस गया और औरंगजेब तथा मुराद ने मिलकर दारा की सेना को आगरे के निकट हरा दिया। दोनों आगरा पहुंचे और औरङ्गजेब बीमार शाहजहां को मिलाने लगा। लेकिन जब शाहजहां ने दारा पर से अपना प्रेम नहीं हटाया तब उसने किले पर अधिकार करके शाहजहां को कैद कर लिया। मुराद को एक रात खूब शराब पिलाकर गिरफ्तार कर लिया और उसे सलीमगढ़ के किले में और पीछे ग्वालियर के किले में बन्दी बना कर भेज दिया। १६५८ ई० में औरङ्गजेब ने अपने को 'आलमगीर' की उपाधि सहित दिल्ली के सम्राट् होने की घोषणा कर दी। परन्तु जब तक उसके विरोधी भाई बने हुए थे तब तक औरङ्गजेब की चिन्ता नहीं मिट सकती थी। दारा हार के पीछे पश्चिम की ओर भाग गया था जहां वह एक बड़ी सेना खड़ी कर रहा था और उधर से शुजा भी लड़ने को बंगाल से चढ़ाई कर रहा था। औरङ्गजेब ने शुजा पर चढ़ाई करके फतेहपुर के पास खजुआ स्थान पर उसे हरा दिया और शाही सेना से खदेड़े जाने पर शुजा अराकान के राजा की शरण में चला गया जहां से उसका फिर कभी पता न चला। दारा से एक बार फिर औरङ्गजेब की भिड़न्त अजमेर में हुई लेकिन वहां भी दारा को भागना पड़ा। वहां से वह एक अफगान मुखिया की शरण में गया लेकिन उसके पास जो कुछ था वह अफगान ने छीन कर उसे औरङ्गजेब के हवाले कर दिया। दारा औरङ्गजेब से कोई आशा वैसे भी नहीं कर सकता था क्योंकि दोनों की शुरू से ही जानी दुश्मनी थी। तिस पर पिछले दिनों दारा ने खुल्लमखुल्ला

घोषणा की थी कि अगर औरङ्गजेब को पकड़ पाऊँगा तो कतल कर दूँगा। दारा को फटे पुराने वस्त्र पहिनवा कर आगरा शहर की गलियों में घुमाया गया और फिर वह जेल में ठेल दिया गया। जेल के भीतर अपना धर्म त्याग परधर्म मानने के अपराध में दारा का सिर कटवा लिया गया। दारा का लड़का सुलेमान शिकोह भी औरङ्गजेब के हाथ आ गया, परन्तु दारा के बध से ही शहर में भारी हाहाकार मचा हुआ था इसलिये औरङ्गजेब को दारा की तरह उसका भी बध करने का साहस नहीं हुआ। वह बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में भेज दिया गया जहां पहिले उसका एक छोटा भाई तथा मुराद भी भेजे गये थे। वहां सुलेमान शिकोह और उसका भाई जहर दिलाकर मरवा डाले गये। कुछ ही पीछे मुराद भी इस अभि-योग में सूली पर चढ़ा दिया गया कि जब वह गुजरात का गवर्नर था तब उसने एक आदमी के बाप को मार डाला था। इस तरह अपने सगे भाइयों और भ्रातृपुत्रों की हत्या करने तथा अपने बाप शाहजहां को जेलखाने में बन्द करने के पीछे धूर्त्त औरङ्गजेब दिल्ली का बादशाह बना। ऐसी राक्षसी चाल वाले औरङ्गजेब के विरुद्ध शिवाजी को हिन्दूजाति के उद्धार का काम करना था। ऐसे धूर्त्त और कपटी के विरुद्ध यदि वीर शिवाजी ने जागरुकता से काम नहीं लिया होता तो उन्हें कदापि सफलता नहीं मिल सकती थी।

मुगल राज्य पर आक्रमण और सन्धि

जब औरङ्गजेब ने राक्षसी चाल चलकर दिल्ली की गद्दी पर अधिकार जमा लिया तब शिवाजी ने इधर यह सोचा कि

उसे उसके पाप-कार्य में सहायता नहीं दी है इससे निस्सन्देह वह रुष्ट तो ही हो गया होगा इस वास्ते औरङ्गजेब की ओर से अब गाफिल रहना ठीक नहीं। इस विचार से उन्होंने स्वयं ही मुगल प्रान्त पर आक्रमण करने का विचार किया। सबसे पहिले जूनार नगर पर धावा किया गया। सन् १६५७ के मई महीने में एक रात को वीर मावलों ने जूनार नगर पर छापा मार कर उसे लूट लिया। यहां पर शिवाजी को लाखों की सम्पत्ति, बहुमूल्य वस्त्र तथा चार सौ घोड़े प्राप्त हुए। सब सामान तुरन्त ही रायगढ़ भिजवा कर शिवाजी एक ऐसे मार्ग से चल कर मुगल साम्राज्य के दूसरे नगर अहमदनगर पहुंच गये जिस पर से बहुत से लोग नहीं चलते थे। उन्होंने अह-मद नगर को लूटना शुरू कर दिया लेकिन किले की सेना के सावधान हो जाने पर वे ७०० घोड़े और ४ हाथी लेकर शहर के बाहर चले गये। फिर मावलों ने पीढ़ा ग्राम पर हल्ला बोल दिया, वहां मुगल सेना से लड़ाई भी हुई। परन्तु अन्त में मुगल भाग खड़े हुए। इसके बाद शिवाजी ने पूना शहर में पहुंच कर अपनी सेना बढ़ानी शुरू की और बहुत से घोड़े खरीदे तथा सवार नौकर रखे। अब उन्होंने दो और नई सेनाएं बनाईं—एक का नाम बारगीर और दूसरी का सिली-दार रखा। ये नवीन सैनिक नेताजी पालकर की अध्यक्षता में रखे गये।

शिवाजी ने इधर मुगल प्रान्त पर आक्रमण और लूट मार तो जारी कर दी, लेकिन भ्रातृ-हत्यारे औरङ्गजेब के दिल्लीश्वर होने पर उन्होंने उससे एकाएक पूरी तैयारी किये बिना सामना करना मूर्खतापूर्ण समझा, इसलिये कुछ देर के लिए उससे संधि

करने में ही कल्याण समझा। उधर शिवाजी की शक्ति-वृद्धि से भयभीत हो बीजापुर का नवाब भी अपनी रक्षा के लिए औरङ्गजेब से संधि की बातें कर रहा था। जब बीजापुर और औरङ्गजेब की संधि होने का समाचार शिवाजी को मिला तब तो उन्हें और भी शीघ्रता करनी पड़ी। इसलिये उन्होंने रघुनाथ पन्त के हाथ औरङ्गजेब के पास एक पत्र भेजा। उस पत्र में उन्होंने मुगल प्रान्तों पर आक्रमण करने के लिए दुःख प्रकट किया था और भविष्य में सहायता सम्बन्धी शर्त्त भी स्वीकार कर ली थी। जब शिवाजी को दिल्ली और बीजापुर की संधि पक्की होने की खबर मिली तो उन्होंने फिर कृष्ण जी भास्कर को दिल्ली भेजा। इस बार के संधि-प्रस्ताव में उन्होंने इतना और लिखा था कि मेरी पैतृक जागीर और देशमुख पद जो मुगल साम्राज्य में है, मुझे लौटा दिया जाय तो मैं इसके बदले में सम्राट् के दक्षिणी सूबों की अपनी सेना द्वारा रक्षा करता रहूँगा। दूत ने औरङ्गजेब के सामने संधि प्रस्ताव रखा और यह भी प्रस्ताव किया कि कोंकण प्रदेश जो बीजापुर की अमल-दारी में है सब तरह से अरक्षित है, यदि वह प्रदेश शिवाजी को सौंप दिया जाय तो मुगल राज्य को बड़ा लाभ होगा।

औरङ्गजेब इस समय यद्यपि उत्तर से निश्चिन्त नहीं हुआ था इसलिये दक्षिण विजय की अभिलाषा को मन ही में रहने दिया था, पर उसका ध्यान बीजापुर को हड़पने की ओर बराबर रहता था। बीजापुर की संधिवार्त्ता से उसके दिल में यह भी सन्देह हो रहा था कि इस तरह मुझ से संधि कर बीजापुर का नवाब शिवाजी का दमन करके अपनी

शक्ति बढ़ाने के फेर में है। इसीसे उसने दक्षिणी शत्रुओं से संधि करने में ही भला समझा। उसने सहर्ष शिवाजी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। पैतृक सम्पत्ति के विषय में फिर विचार करने की बात कह उसने शिवाजी को अपने दर्बार में पांच-हजारी मनसब प्रदान किया। औरङ्गजेब ने शिवाजी को कोंकण प्रदेश पर भी अधिकार जमाने की आज्ञा दे दी। इससे उसका अभिप्राय यह था कि यदि शिवाजी और बीजापुर के आदिलशाह आपस में लड़ते रहेंगे तो उनमें से कोई भी मुगल प्रान्तों पर हाथ न साफ़ कर सकेगा और दोनों की शक्ति भी क्षीण होती रहेगी। शिवाजी ने जब दूत के मुख से औरङ्गजेब की बातें सुनीं तो उन्होंने अति प्रसन्नता के साथ कोंकण प्रदेश पर अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया। थोड़े ही दिनों पहिले औरङ्गजेब से युद्ध करने के कारण बीजापुर की शक्ति शिथिल हो रही थी। प्रायः समस्त दुर्ग जीर्ण हो रहे थे। इसी समय आदिलशाह ने धन की कमी से अपने बहुत से सैनिकों को नौकरी से जवाब दे दिया था। शिवाजो ने निकाले हुए उन ७०० यवन सिपाहियों को भी अपनी सेना में भर्त्ती कर लिया और रघुबल्लाल को उनका अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। यवन सेना भर्त्ती करते समय शिवाजी के कितने ही हितैषियों ने उन्हें रोका, पर दूरदर्शी शिवाजी ने 'कण्टकेनैव कंटकम्' की नीति समझा कर सब को सन्तोष प्रदान किया था। उधर बीजापुर दर्बार में मतभेद पैदा होगया था जिससे राज्य की भूमि अरक्षित अवस्था में थी। शिवाजो ने इस फूट से खूब लाभ उठाया और कोंकण के तमाम दुर्गों पर अधिकार कर लिया। दुर्गों पर अधिकार करते समय शिवाजी की फतह खां सीदी से मुठ-

भेड़ हो गई। वह कोंकण प्रदेश में बीजापुर की ओर से मिली हुई एक जागीर का मालिक था और अपने पास एक अच्छी सेना एकत्र किये हुए था। श्यामराजे पन्त की अध्यक्षता में शिवाजी की सेना सीदी के ऊपर चढ़ गई। परन्तु वह पहिले ही से लड़ाई के लिए तैयार था। जब शिवाजी की सेना जागीर के भीतर घुस गई तब सीदी की सेना ने मरहठों पर पीछे से आक्रमण कर दिया जिससे शिवाजी की सेना को अन्त में पीछे हटना पड़ा। पहिले ही पहिल अपनी सेना के हटने से शिवाजी को बड़ा दुःख हुआ, किन्तु पीछे उन्हें मालूम हो गया कि निर्बलता के कारण नहीं, पेशवा श्यामराजेपन्त की मूर्खता से ऐसा हुआ है। तब उन्हें उनके पद से हटा कर शिवाजी ने मोरो त्रिमुल को उस पद पर नियुक्त किया और सीदी के दमन के लिए रघुनाथपन्त की अध्यक्षता में सेना भेजी। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ, किन्तु पानी बरसने के कारण सीदी बच गया।

अफजल खां का बध

बीजापुर के नवाब ने जब देखा कि शिवाजी तो धीरे धीरे हमारे कुल राज्य को ही हड़प लेना चाहता है तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। एक दिन दर्बार में उसने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा कि अगर शिवाजी का दमन जल्दी नहीं किया जाता तो बीजापुर राज्य की बर्बादी होने में अब अधिक देर नहीं है। नवाब की बातें सुन उसके एक भारी पठान सरदार अफजल खां ने कहा कि क्या हम लोग ऐसे डरपोक हो गये हैं कि एक लुटेरे को भी यमपुरी नहीं पठा सकते? मैं इस भरे दर्बार में

प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि "यदि मैं शिवाजी लुटेरे को नंगे पांव दर्बार में लाकर हाजिर न कर दूँ या उसका शिर काट कर न ला दूँ तो मैं पठान नहीं और मेरा अफजल खां नाम नहीं।" अफजल खां बीजापुर दर्बार में एक योद्धा और पराक्रमी मनुष्य था और अपनी गिरती अवस्था में भी एक अच्छे बली आदमी को मसल डालने का पूरा दावा रखता था। उसकी अध्यक्षता में नवाब ने सन् १६५९ के अगस्त महीने के अन्त में पांच हजार घुड़-सवार, सात हजार पैदल और हजारों ऊँट तथा तोपें शिवाजी की सैन्य पर विजय पाने के लिए रवाना कर दीं। अफजल खां की इतनी बड़ी भारी सेना की चढ़ाई ने महाराष्ट्र में भारी हलचल मचा दी, पर वीर शिवाजी का साहस अटल बना रहा। मरहठे तो वीर शिवाजी के नेतृत्व में यवनराज्य ध्वंस करने का संकल्प कर ही चुके थे इसलिये वे अफजल की सेना से सामना करने के लिए तैयारी करने लगे। अपने सभी दुर्गों को खाद्य पदार्थों और शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण कर शिवाजी अफ-जल से लोहा लेने के वास्ते अपने प्रतापगढ़ दुर्ग में जा डटे। उधर अफजल खां अपनी भारी सेना को लेकर पुरन्धर की ओर चल पड़ा। उसे यह तो पता था ही कि राज्य का जितना भाग शिवाजी के अधिकार में आ चुका है वहां के हिन्दू निवासी जी-जान से शिवाजी के साथ हैं। इसलिये उन पर अपना आतङ्क जमाने और उन्हें भयभीत करने के लिए अफजल और उसकी सेना ने रास्ते में ग्रामवासियों के ऊपर बड़ी क्रूरता दिखानी शुरू की। वे राक्षस रास्ते के सभी हिन्दू मन्दिरों को ढहाते, देवमूर्तियों को तोड़ते और हिन्दू ग्रामों में आग लगाते हुए तुलजापुर तक पहुंचे जहां बहुत से भव्य देवमन्दिर थे।

इन राक्षसों ने उनमें से एक को भी नहीं छोड़ा और देवमूर्त्तियों की जितनी दुर्दशा उनसे हो सकी उतनी की गई। हिन्दू ग्रामों को लूटते और फूंकते हुए राक्षसी सेना पंढरपुर पहुंची। वहां भी रमणीक देवमन्दिर धूल में मिला दिये गये। अपनी ही हिन्दू प्रजा पर ऐसे राक्षसी अत्याचार करा कराके अफजल खां मन ही मन बड़ा प्रसन्न होता था।

उधर हिन्दू-धर्म-रक्षक वीर शिवाजी के कानों में जब यवन सेना के इन अत्याचारों की वार्त्ता पहुंची तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। अपने मावला सर्दारों को धर्मरक्षा के लिए उत्तेजित कर शिवाजी अपनी इष्टदेवी भवानी के मन्दिर में गये। वहां से वे माता जीजीबाई के पास गये और उनसे हिन्दू प्रजा और धर्म पर यवन सेना के हृदय कंपाने वाले अत्याचारों का समाचार कह कर उन्होंने रणक्षेत्र में जाने को आज्ञा मांगी। माता जी ने भी आशीर्वाद दे उन्हें विदा किया। जब शिवाजी प्रतापगढ़ दुर्ग में थे तभी सामने की घाटी में विशाल यवन सेना आती हुई उन्हें दिखाई पड़ी। इसके बाद क्या घटना हुई इस विषय में इतिहास-लेखकों के दो मत हैं। जितने भी विदेशी और यवन लेखक हैं वे सब तो एकमत से यह कहते हैं कि जब शिवाजी ने इतनी विशाल यवन सेना देखी तो उन्होंने अपने को लड़ने में असमर्थ समझ अफजल खां के पास अपने दूत द्वारा यह सन्देशा भेजा कि "मेरी क्या ताब है कि आप जैसे वीर पुरुष से युद्ध करने का साहस करूँ। इससे मेरी बिनती है कि अगर आप मेरे किये पिछले कर्मों को भूल जावें तो मैं अधिकार में किये सब किलों और स्थानों को छोड़ बीजापुर दर्बार की अधीनता स्वीकार कर लूँ।" अफजल खां

ने शिवाजी पर विश्वास कर लिया और शिवाजी ने धोखे में उसके प्राण ले लिये। परन्तु जैसा एक अँग्रेज लेखक स्टाक साहब ने लिखा है; हिन्दुओं के विषय में साधारणतया और मरहठों के विषय में विशेषतया मुसलमान लेखकों के लेख भूल व पक्षपात से भरे हुए हैं। स्टाक देरंग का यह भी कहना है कि मुसलमानों के इतिहास के मुकाबले में मरहठों के इतिहास अधिक विश्वास के योग्य हैं। और सभी मरहठा लेखक इस बात में सहमत हैं कि शिवाजी ने अफजल खां का बध आत्मरक्षा में किया था। इन लेखकों का कहना है कि जब शिवाजी के किले के निकट पहुँचा तब अफजल ने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि मरहठों की सेना को तो हम पराजित कर दें, पर चालाक शिवाजी हाथ से निकल जाये। उस दशा में हम क्योंकर वह प्रतिज्ञा पूरी कर सकेंगे जो दर्बार के सामने की थी? इसी विचार से उसने अपने सहचर गोपीनाथ पन्त को अपना दूत बना कर शिवाजी के पास भेजा। पन्तजी ने जाकर शिवाजी से अफजल खां का यह सन्देश कहा कि आपके पिता शाहजी बीजापुर दर्बार के मित्र हैं इसलिये बीजापुर-सर्दार आपसे युद्ध नहीं करना चाहते। उनकी इच्छा है कि आप भी दर्बार के मित्र बन जाइये। साथ ही कोंकण प्रदेश के जागीरदार भी वे आप ही को बनाये रखने को तैयार हैं। इतने प्रबल राज्य बीजापुर से जब मेल के द्वारा ही कोंकण प्रदेश हमें मिला जाता है तब उससे लड़ने में लाभ ही क्या, इसीसे शिवाजी ने अफजल की बात स्वीकार कर ली। तब पन्तजी ने उनसे यह निवेदन किया कि एक बार आप स्वयं अफजल खां से मिल लें तो अत्युत्तम हो। स्वभावतः पन्तजी के इस प्रस्ताव से शिवाजी

का माथा ठनका और उन्होंने सोचा कि अभी संधिपत्र तैयार भी नहीं हुआ तभी मिलने मिलाने की इस बात का क्या अर्थ ? इसी सोच विचार में पड़ उन्होंने पन्तजी को ठहरने की आज्ञा दी और आप दर्बार से उठ अन्तःपुर को चले गये। पीछे रात के समय शिवाजी चुपचाप गोपीनाथ पन्तजी के पास पहुँचे और उनसे बोले कि माना कि आप बीजापुर के नौकर हैं, लेकिन साथ ही उच्च कुल के एक ब्राह्मण हैं। हम क्षत्रिय लोग उन्हीं ब्राह्मणों के दास हैं। फिर आप हमारी हानि भला कैसे देख सकते हैं ? आपकी आंखों के सामने इन विधर्मी यवनों द्वारा भारत का सर्वनाश हो रहा है। हमारे धर्म की इनके हाथों जो दुर्गति हो रही है यह भी आपसे छिपी नहीं है। मैंने अपने पवित्र हिन्दू धर्म की रक्षा के हेतु इन विधर्मियों से रार ठान रखी है। इनके षड्यंत्र से आप मेरा नष्ट होना कदापि नहीं देख सकते। आपकी आज्ञा के अनुसार मैं अफजल खां से मिलने को तैयार हूं लेकिन कहीं वह मुझे अपने जाल में न फँसा सके इसका प्रबन्ध आपको करना होगा। पन्तजी के ऊपर शिवाजी के इस धर्मोपदेश और प्रार्थना ने गहरा प्रभाव पैदा किया और जब धर्म की शपथ देकर शिवाजी ने अफजल खां का हार्दिक उद्देश्य जानना चाहा तो उन्होंने सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। गोपीनाथ पन्त का भी हृदय कर्मवीर शिवाजी की इस वाणी को सुन कर यवनों से फिर गया और उन्होंने शिवाजी के शुभ उद्योग से पूर्ण सहानुभूति प्रकट करते हुए सहायता देने का वचन दिया। पन्तजी के चले जाने के पीछे शिवाजी ने कृष्णजी भास्कर को अपनी ओर से अफजल के पास भेजा जिन्होंने संधि की बातें निश्चित करने

के उपरान्त मिलने के लिए प्रतापगढ़ दुर्ग के नीचे एक स्थान निश्चय किया।

अफजल खां से मिलने के लिए रवाना होने के पहिले शिवाजी ने अपने सभी सेनाध्यक्षों को दल-बल सहित सावधान रहने की आज्ञा दी और सेना को यथास्थान नियुक्त कर दिया जिसमें आवश्यकता के समय वह गाफिल न रहे। कहा जाता है कि इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पिंडदानादि के लिए काशी और गयाजी को ब्राह्मण भी भेज दिये। चलने के पहिले शिवाजी एक बार फिर माता जीजीबाई से आशीर्वाद लेने गये। माता ने कहा कि, "शिवा! देखना ये मुसलमान बड़े ही विश्वासघाती हैं। इनसे सदा सावधान रहना। देख अफ-जल खां से मिलने तो जा रहा है पर मैंने सुना है कि वह एक विशालकाय योद्धा है और तू उसके सामने बहुत छोटा है। इससे यह भी ध्यान रखना कि कहीं वह तुझे दबा न ले।" शिवाजी ने उत्तर दिया कि "माता! मैं सब तरह से सावधान रहूँगा। आप चिन्ता न करें। भवानी की दया से सब मंगल होगा।" माता से विदा हो शिवाजी अपने स्थान पर आये और जिरहबख्तर (कवच) धारण करके उसके ऊपर एक साधारण अँगरखा पहिना। फिर बाघनख को छिपाकर वे पूर्व निश्चय के अनुसार दो सैनिक शम्भाजी कावजी और जिउमहला को साथ ले अफजल खां से मिलने को चले। जब निकट पहुंचे तो शिवाजी अकेले अफजल खां के तम्बू के भीतर घुसे। अफ-जल खां भी आगे बढ़ा और उन्हें छाती से लगाया। छाती से लगाते समय अफजल खां ने अपने मजबूत हाथ से शिवाजी की गर्दन दबानी शुरू की तो शिवाजी ने उसकी नीयत खराब देख

कर बाघनख उसके कलेजे में घुसेड़ कर उसकी अँतड़ियां खींच लीं। कोई कोई तो यहां तक कहते हैं कि अफजल खां ने हाथ से दबाया ही नहीं बल्कि शिवाजी पर तलवार भी उठायी थी तब उन्होंने बघनखा घुसेड़ा था। जो हो, अँतड़ियों के निकल पड़ने पर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और उस स्थल पर हाहाकार मच गया। अफजल खां के साथ गये हुए दो जवानों में एक मुसलमान था और एक थे ब्राह्मण गोविन्द पन्त। उन्होंने शिवाजी के इस कृत्य से क्रुद्ध हो उन पर वार करना चाहा, पर मुसलमान तो मार डाला गया और पन्त को ब्राह्मण होने से अवध्य बता शिवाजी ने हथियार छिनवा कर छोड़ दिया। यह घटना क्वार शुक्ला सप्तमी शुक्रवार को हुई थी। अफजल खां का सिर काट लिया गया और इस तरह शिवाजी का सिर काट कर लाने की प्रतिज्ञा करने वाले अफजल को अपना ही सिर भवानी-भक्त शिवाजी को दे आना पड़ा।

इस घटना को लेकर सभी विदेशी और यवन इतिहास-लेखक शिवाजी पर दगाबाजी का दोषारोपण करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि अफजल खां शुद्ध भाव से मिला था, स्वयं शिवाजी ने ही धोखे में उस का प्राण लिया था। हमारे विचार से तो ऐसा लिखना कदापि उचित नहीं प्रतीत होता। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि जुम्मा (शुक्रवार) के दिन शिवाजी जैसे काफिर का बध करके शहीद बनने और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके बीजापुर दर्बार में असाधारण सम्मान और पद लाभ करने के विचार से ही अफजल खां ने शिवाजी से मिलने का विचार किया होगा और जिस समय उस भीमकाय ने एक नाटे कद के क़ाफिर को अपने चंगुल में फँसा देखा होगा उसी समय उसने

अपने मज़बूत हाथों के नीचे उसे मसल डालने का हौसला किया होगा। उस समय यवनों की राक्षसी लीला के रास्तों में अगर कोई कण्टक था तो वही एक शिवाजी। इसलिये यदि अफजल खां जैसा हिन्दू-द्वेषी मुसलमान उसे धोखे में मार डालने का विचार करे तो आश्चर्य ही क्या, जब कि काफिरों को दोजख पठाने की आज्ञा इस्लाम में है और स्वयं औरङ्गजेब का भाई दारा शिकोह हिन्दूधर्म से केवल सहानुभूति रखने के कारण ही कतल कर डाला जाता है। इसके विरुद्ध जो लोग यह कहते और मानते हैं कि अफजल खां अत्यन्त शुद्ध भाव से शिवाजी से मिलने गया था, वे मानों उसे एकदम भोलाभाला सतयुगी प्राणी सिद्ध करना चाहते हैं। नहीं तो जिस अफजल खां ने शिवाजो का सिर काटने की प्रतिज्ञा भरे दर्बार में करके चढ़ाई की थी और जिस अफजल खां के द्वारा शिवाजी के बड़े भाई शम्भाजी का बध कर्नाटक में हुआ था तथा जिस अफजल खां के स्वामी बीजापुर के नबाब ने शिवाजी के पूज्य पिता शाहजी का प्राण तक लेने का आयोजन किया था, वही अफजल क्योंकर शिवाजी पर विश्वास कर सकता था? फिर इस चढ़ाई के समय में ही जिस अफजल खां ने राह में एक भी देव मन्दिर और मूर्त्ति नष्ट करने से नहीं छोड़ा, और हिन्दू प्रजा पर राक्षसी अत्याचार किये थे वही उन शिवाजी पर कैसे विश्वास कर सकता था जो प्रकट रूप से हिन्दूधर्म और गो-ब्राह्मण की रक्षा के लिए यवनों से लड़ने का दृढ़ संकल्प किये हुए थे? हमारे मत से तो शिवाजी और अफजल खां—दो में से एक भी सरलचित्त से मिलने को नहीं गये थे। दोनों ही पूर्ण रूप से सावधान थे और अपना अपना भाग्य आजमाने में लगे हुए थे।

जिसकी मृत्यु आ पहुंची थी उसके लिए उसने उचित सामान कर लिया और अपना शिकार लेकर वह चलती बनी।

परन्तु हम थोड़ी देर के लिए यदि यह भी मानलें कि शिवाजी ने धोखे में ही अफजल खां का बध किया, तो भी उन्होंने उस धर्म की दृष्टि से कोई बुरा कार्य नहीं किया जिसकी रक्षा के लिए उन्होंने अपना जीवन ही लगा रखा था। हिन्दू-धर्मशास्त्र चिल्ला चिल्ला कर कह रहे हैं—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।

आततायिनमायन्तं हन्यादेवाविचारयन्॥

अर्थात् जो आततायी है उस मनुष्य को अवश्य मार डाले चाहे वह गुरू हो, बालक हो या वृद्ध हो या विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हो।

आततायी की परिभाषा हमारे शास्त्रों में यह लिखी हुई है—

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।

क्षेत्र दार हरश्चैव षडेते आततायिनः॥

अर्थात् अग्नि से स्थानादि जलाने वाला, विष देने वाला, (मारने को) शस्त्र हाथ में लिया हुआ, धन छीनने वाला, खेत और स्त्री का हरने वाला—ये छः आततायी हैं।

इनमें से किसी एक प्रकार का आततायी भी बध योग्य होता है और वहां अफजल खां में तो छओं प्रकार के आततायी के लक्षण विद्यमान् थे। इस हेतु यदि धोखे में भी शिवाजी ने

उसका बध किया हो तो भी वे इसी प्रकार दोषमुक्त माने जायेंगे जैसे वृक्ष की ओट से बालि को मारने पर भी मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी। और यदि अफजल खां ने स्वयं पहिले शिवाजी पर वार किया हो या वार करने की चेष्टा प्रकट की हो तब तो आत्मरक्षा के लिए उसका बध करना किसी की भी दृष्टि में अनुचित नहीं ठहर सकता। ऐसे अवसर के लिए तो मनु महाराज भी अपनी स्मृति के अध्याय ८ के श्लोक ३५१ में स्पष्ट आज्ञा देते हैं—

नाततायिबधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।

प्रकाशंवाऽप्रकाशं वा मन्युर्मा मन्युमृच्छति॥

अर्थात् लोगों के सामने अथवा एकान्त में आततायी के मारने वाले को कुछ भी दोष नहीं होता, क्योंकि वह क्रोध उस क्रोध को प्राप्त होता है।

जो हो, अफजल खां के बध के उपरान्त मरहठों ने यवन सैनिकों को काटना शुरू किया और सेनापति के बिना यवन सेना भाग खड़ी हुई। शिवाजी ने भागते हुओं पर प्रहार करने से अपने वीरों को रोका लेकिन तब तक हजारों यवन सैनिक धराशायी हो चुके थे। जिन लोगों ने आत्म-समर्पण किया उनके साथ ऐसा अच्छा वर्त्ताव किया गया कि कितने ही यवन सैनिक शिवाजी की सेना में भर्त्ती हो गये। इस युद्ध में शिवाजी को ६५ हाथी, चार हजार घोड़े, बारह सौ ऊँट, दो सौ गठरी बहुमूल्य वस्त्र और सात लाख के मूल्य के सुवर्णादि तथा तोपें प्राप्त हुई थीं।

बीजापुर से संग्राम और संधि

इसके पश्चात् शिवाजी ने राजापुर का रास्ता पकड़ा। वहां से कर लेकर बाहिल पर अधिकार जमाया जहां से बहुत सा धन प्राप्त कर रायगढ़ भेज दिया। कुछ ही दिन बाद शिवाजी ने पन्हाला दुर्ग पर बड़ी कुशलता से अधिकार जमाया। उन्होंने अपने सेनानायकों में दिखवटी झगड़ा खड़ा कर दिया और एक नायक ८०० जवान लेकर पन्हाला के दुर्गाध्यक्ष के पास चला गया। वहां उसने कहा कि शिवाजी से अनबन होने से यहां आया हूँ और नौकरी करना चाहता हूँ। दुर्गाध्यक्ष को विश्वास हो गया और उसे ससैन्य किले में नौकर रख लिया। कुछ ही दिन बाद शिवाजी ने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। उनकी सेना दुर्ग के भीतर थी ही उसने दुर्ग का फाटक खोल दिया। शिवाजी घुस पड़े और कुछ देर की लड़ाई के बाद दुर्ग पर अधिकार जमा लिया। शिवाजी का आतंक अब दूर दूर तक छा गया और उनके सवार बीजापुर तक धावा मारने लगे। इसी समय पवनगढ़ और केलनेह तथा रांगना और बसन्तगढ़ भी उनके अधिकार में नाम-मात्र के युद्ध से ही आ गये। सन् १६५९ के दिसम्बर में उन्होंने कोल्हापुर पर भी अधिकार जमा लिया। इसके बाद शिवाजी बीजापुर तक बढ़ कर लौट आये। इधर तो शिवाजी विजय पर विजय प्राप्त कर रहे थे और उधर बीजापुर के नवाब जैसे भी हो वैसे उनका दमन करने की सोच रहे थे। हबशी सर्दार सीदी जौहर करनूल प्रदेश की सेना का अध्यक्ष था। उसे नवाब ने हुक्म दिया कि अफजल खां से भी दूनी सेना लेकर

चढ़ाई करो। अफजल खां का पुत्र फाजल खां भी पिता की मृत्यु का बदला लेने के वास्ते साथ हो लिया। इन दोनों को पन्हाला दुर्ग पर हमला करने का हुक्म दिया गया। इसी समय सीदी का नाम सलावत खां रखा गया। आक्रमण के पहिले नवाब ने शिवाजी के पास दूत भेज कर कहलाया कि खैर चाहो तो अब भी मेरी अधीनता स्वीकार कर लो। इसका उत्तर शिवाजी ने यह भेजा कि, "नवाब! अब तुम्हें मेरे ऊपर आज्ञा करने का कोई अधिकार नहीं है।" दूत को विदा कर शिवाजी आक्रमणकारियों से सामना करने की तैयारी करने लगे, उधर नवाब का क्रोध और भी भड़क उठा। शिवाजी ने सीदी से लड़ने के लिए रघुनाथपन्त को नियुक्त किया। आबाजी सोनदेव और कल्याण भीमरोकर दुर्गों और प्रदेशों की रक्षा के काम पर रखे गये और मोरोपन्त के सुपुर्द पुरंधर, सिंहगढ़ और प्रतापगढ़ के दुर्ग किये गये। स्वयं शिवाजी पन्हाला दुर्ग में जम गये। एक चतुराई उन्होंने यह भी की कि अपनी चारों ओर की सेना को उन्होंने दुर्गों और वनों में छिपा रखा था और बाहर से युद्ध का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई पड़ता था। शत्रु सेना इससे बड़े सन्देह में पड़ गई। यवन सेना ने शिवाजी का पता लगा पन्हाला दुर्ग को घेर लिया। सेना के दुर्ग के पास आ जाने पर नेताजी पालकर ने आसपास के प्रान्तों को उजाड़ना शुरू किया जिससे शत्रु को भोजनादि की सामग्री कहीं से न मिल सके। मावला लोगों ने भी शत्रु पर आक्रमण करके बड़ी हानि पहुंचायी, पर सीदी का धैर्य न टूटा और वह दुर्ग पर घेरा डाले ही रहा। शिवाजी ने अपने को घिरा देख मन में सोचा कि किले के भीतर रहने में मैंने बड़ी

भूल की। चार महीने तक किले पर घेरा पड़ा रहा इससे शिवाजी ने एक चाल चली। अपनी सेना दो भागों में बांट कर शिवाजी ने कुछ वीरों को तो अपने साथ लिया और कुछ को बाजीप्रभु देशपांडे की अधीनता में कर दिया। उधर शत्रुसेना को गाफिल करने के लिए कुछ मेलमिलाप की भी बातें शुरू कर दीं। अन्त में एक रात को बाजीप्रभु के अत्यन्त आग्रह करने पर शिवाजी अपने साथ कुछ योद्धाओं को लेकर किले से निकल जंगल की ओर चल पड़े। उधर बाजीप्रभु मावला वीरों के साथ शत्रु से सामना करने को डटे रहे। शिवाजी को विदा करते समय बाजीप्रभु ने उनसे कह दिय था कि महाराज! जब आप रांगना दुर्ग में सकुशल पहुंच जायें तब पांच बार तोप दगवा दें। तब तक मैं जी-होमकर शत्रु सैन्य से मोर्चा लूंगा। शिवाजी के किले से निकल भागने की खबर मिलते ही शत्रु-सेना उनके पीछे दौड़ी, पर वीर बाजीप्रभु ने अपने थोड़े से वीरों के साथ उसे नाकों चने चबवाये। बाजीप्रभु के सैनिकों ने अपने से कई गुनी शत्रु सेना को तब तक रोक रखा जब तक पांच तोपों की आवाज उन्होंने न सुन ली। बाजीप्रभु का शरीर भी शस्त्रों के घावों से चलनी हो रहा था। तोपों की आवाजें सुन कर उस स्वामिभक्त वीर ने शान्तिपूर्वक अपने स्वामी के लिए प्राण दे दिये। यह घटना सन् १६६० ई० की है। सन् १६६१ ई० में स्वयं बीजापुर के नवाब ही एक विशाल सेना लेकर शिवाजी पर चढ़ आये। शिवाजी ने बहुत दिनों तक उसे युद्ध में लगाये रखने की नीति सोची और चुने हुए सवारों को लेकर वे बहुत दूर तक फैली हुई नवाबी सेना पर कभी आगे, कभी पीछे और कभी मध्य भाग में आक्रमण करने

लगे। उधर नवाब ने यद्यपि चढ़ाई के समय शिवाजी के बहुत से दुर्गों और स्थानों पर अधिकार कर लिया था, किन्तु इस प्रकार की शिवाजी की युद्ध-नीति से वे हैरान हो गये। उनकी द्रुतगति के कारण कभी किसी को पता ही नहीं चल पाता था कि कब और सेना के किस भाग पर शिवाजी का हमला होगा। इसी बीच उपयुक्त अवसर जान शिवाजी बाजी घोरपड़े के ऊपर चढ़ गये और पिता की आज्ञा के अनुसार उससे युद्ध करके यमपुरी पठाकर बदला लिया। उसके गृह को फूंक दिया और उसके परिवार तक का नामनिशान मिटा दिया। अन्त में बीजापुर के नवाब ने शिवाजी से मेल करने में ही लाभ सोचा और अपनी कुल सेना को वापस बुला कर उनके पिता शाहजी के द्वारा मेल कर लिया। शाहजी ने जब सुना कि शिवाजी ने बाजी को यमधाम पठा दिया है तब वे बड़े प्रसन्न हुए और अपने पुत्र से मिलने को चले। शिवाजी ने भी कई मील पैदल आगे बढ़ कर पिताजी से साष्टांग प्रणाम किया और शाहजी ने पुत्र-रत्न को छाती से लगा आशीर्वाद दिया, "पुत्र! तुम्हारी सदा जय हो।" बीजापुर से शिवाजी की जो संधि हुई उसके अनुसार कल्याण से गोवा तक का कोंकण प्रदेश शिवाजी के अधिकार में आ गया। इस समय उनके पास इस प्रदेश के सिवा भीमा से वार्धा तक घाटमाला प्रदेश था और इसमें चाकन से नीरा तक तथा पुरंधर से कल्याण तक की जागीर भी थी। इस समय शिवाजी के पास ५००० पैदल और ७००० सवार थे। अब बीजापुर से सन् १६६२ में संधि करके शिवाजी ने मुगल राज्य की ओर ध्यान दिया।

मुगलों की हार

शिवाजी ने अब मुगलों से सामना करने के लिए तैयारी प्रारम्भ की। अपनी सेना के दो भाग करके पैदल का अध्यक्ष मोरदपन्त को और रिसाले का अधिपति नेताजी पालकर को बनाया। उधर औरंगजेब ने भी शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत हो उनका दमन करने की ठानी। सन् १६६१ ई० में मुगल सेना ने शिवाजी के अधीनस्थ कल्याण पर अधिकार कर लिया। उधर नेताजी पालकर दक्षिण की मुगलों की राजधानी औरंगाबाद तक मुगल-मंडल को लूट-खसोट कर पूने वापस आये। औरङ्गजेब इस खबर को सुन आपे से बाहर हो गया और शायस्ता खां को भारी सेना से शिवाजी पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। शायस्ता खां ने पूना और चाकन पर अपना अधिकार जमा लिया और पूना को मुगल सेना का केन्द्र बनाया। चाकन के रक्षक फिरंगा निर्मला ने बड़ी वीरता से एक दिन दुर्ग की रक्षा की लेकिन शत्रुसेना को अपने से बहुत प्रबल देख दूसरे दिन दुर्ग खाली कर दिया। इसी लड़ाई से शायस्ता खां को पता चल गया कि मरहठों को जीतना हँसी खेल नहीं है। उधर औरङ्गजेब ने जोधपुर के राजा यशवन्त सिंह को भी उनकी बड़ी सेना सहित शायस्ता खां की मदद के लिए भेज दिया। पूने पर अधिकार करने के पश्चात् शायस्ता खां उसी भवन में रहने लगा जिसे दादाजी कोनदेव ने माता जीजीबाई और शिवाजी के रहने के वास्ते बनवाया था और जिसमें वीर शिवाजी बहुत वर्षों तक रहे थे। इस बात से शिवाजी को बड़ा क्षोभ हुआ। परन्तु जब उन्होंने राजा यशवन्त सिंह की राजपूत-सेना को पड़ी देखा तब उनके हृदय

को भारी व्यथा पहुँची। वे एक रात को गुप्त रूप से राजा यशवन्त सिंह के डेरे में पहुँचे और अपने को शिवाजी का आदमी बता उनसे हिन्दूधर्म की रक्षा के लिए मुसलमानों को सहायता न देने का अनुरोध करने लगे। शिवाजी की वाणी में बिजली की शक्ति थी जिससे उन्होंने राजा यशवन्त सिंह का हृदय अपने वश में कर लिया और यवनों की ओर से एकदम फेर दिया। चलते समय जब शिवाजी ने अपना असली परिचय दे दिया तब राजा यशवन्त सिंह ने उन्हें बड़े प्रेम से आलिंगन किया और उनकी आज्ञा के अनुसार अपनी सेना को तटस्थ रखने का वचन दिया। उनसे विदा हो शिवाजी अपने सिंहगढ़ दुर्ग में चले गये। उधर शायस्ता खां ने मरहठों की चालाकी के विचार से ऐसा प्रबन्ध कर रखा था कि शिवाजी किसी प्रकार नगर में न घुस आवें। लेकिन शीघ्र ही उसे अनुभव से सिद्ध हो गया कि शेर की मांद में बस कर शेर से बचना असम्भव है। शिवाजी को जब पता चला कि अमुक दिन एक बरात पूना जायेगी तो उसी के साथ पूने में घुसने के विचार से वे पचीस मावला वीरों के साथ रात को एक बाग में छिप रहे। सिंहगढ़ से पूना तक के पथों पर भी उन्होंने गुप्त रूप से अपनी सेना बैठा दी थी। जब बरात बाग के निकट से होकर आगे बढ़ी तो शिवाजी भी पचीसों मावलों सहित उसमें मिल गये। बरात जब रात के अंधकार में शायस्ता खां के निवास स्थान के पास से जाने लगी तब शिवाजी अपने आदमियों सहित दुर्ग के नीचे अंधकार में छिप रहे। बरात चली गई और शायस्ता खां के अन्तःपुर वाले भी सो गये। इसी बीच एक खिड़की की राह मावला योद्धा उस कमरे में घुस गये जिसमें शायस्ता खां और

सूरत की लूट शिवाजी महाराज रायगढ़ भेज रहे हैं।

उनकी बेगमें सो रही थीं। खटका होने पर सब जाग पड़े और मावला योद्धाओं को देख कर खां साहब के होश उड़ गये। वे झट एक खिड़की की राह कूद पड़े, पर जाते जाते भी वे अपने हाथ की दो अंगुलियां एक मावला योद्धा की तलवार की भेंट चढ़ाते गये। शायस्ता तो भाग कर बच गया, लेकिन उसका लड़का अब्दुल फतह खां और बहुत से सिपाही मारे गये। शाही सेना के घुसने के पहिले ही शिवाजी अपने उन योद्धाओं के साथ शहर के बाहर निकल गये और तीन चार मील जाने पर मशालें जला लीं। फिर वे सिंहगढ़ में चले गये। दूसरे दिन सबेरे ही मुगल सेना ने सिंहगढ़ पर चढ़ाई की, लेकिन किले की तोपों ने उसके पांव उखाड़ दिये और बचे हुए सैनिक भाग खड़े हुए जिनका पीछा बहुत दूर तक नेताजी पालकर ने किया। इन हारों से शायस्ता खां का हृदय बड़ा खिन्न हुआ और वह राजा यशवन्तसिंह की शिकायतें करने लगा। पीछे जब सूरत में मक्का के यात्री लूटे गये तब औरङ्गजेब ने यशवन्तसिंह पर शिवाजी से मेल का सन्देह करके उन्हें दक्षिण से वापस बुला लिया। परन्तु राजा यशवन्त सिंह दक्षिण से लौट कर ससैन्य अपने राज्य में चले गये।

सूरत की लूट

सन् १६६३ ई० में मुगल सेना को इस तरह हराने के पीछे शिवाजी ने शाही सेना के अधिकृत किये हुए स्थानों पर फिर अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। उन्होंने फिर कुछ धन एकत्र करने का विचार किया। उनका ध्यान सूरत नगर पर पड़ा जो समुद्री व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र होने के

साथ ही मक्का जाने वाले मुसलमान यात्रियों के लिए प्रधान बन्दरगाह था, जिससे हज्ज के लिए जाने वालों की भीड़ सदा यहां रहती थी। सन् १६६४ ई० के जनवरी महीने में शिवाजी चार हजार सवारों सहित सूरत पर चढ़ गये और छः दिन तक उस शाही नगर के धनी व्यापारियों तथा मक्का-यात्रियों को लूटा। लूट में करोड़ों की सम्पत्ति उनके हाथ लगी जिसे साथ ले वे अपने रायगढ़ किले को लौट गये। अंग्रेजों और डच वालों को भी बस्तियां सूरत में थीं लेकिन सर जार्ज आक्सेनडेन नामक अंग्रेज ने बड़ी कठिनाई से उनकी रक्षा की। कुछ दिनों बाद शिवाजी ने सूरत पर दूसरी बार फिर छापा मारा था। इस बार भी खूब लूटमार हुई थी लेकिन नगर के मुसलमान अधिकारी से कुछ करते-धरते न बना। पहिली बार की लूट से लौटने पर शिवाजी ने सुना कि उनके पिता शाहजी शिकार खेलते समय घोड़े पर से गिर कर मर गये। विधिवत् श्राद्धादि कर्म करने के लिए शिवाजी सिंहगढ़ गये और क्रिया-कर्म से छुट्टी पा वे फिर रायगढ़ लौट आये। शाहजी अपनी मृत्यु के समय बङ्गलोर के आसपास बहुत बड़ी जागीर छोड़ गये थे जो पीछे शिवाजी के अधिकार में आ गयी।

मुगलों का दूसरा हमला और संधि

जब औरङ्गजेब को पता चला कि शिवाजी ने सूरत लूट लिया है जहां से वे अपरिमित धन रायगढ़ ले गये हैं तब उसे और भी चिन्ता हुई और उसने अन्त में शिवाजी के दमन के लिए जयपुर-नरेश जयसिंह को रवाना किया। वे दल-बल सहित १६६५ ई० के चैत्र में पूना पहुंचे। इनके साथ में मुगल

सरदार दिलेर खां भी था। उधर शिवाजी ने पिता की क्रिया से छुट्टी पा राजा की पदवी ग्रहण की और अपने नाम का सिक्का चलाने लगे थे। राजा जयसिंह ने पूना पहुँचते ही दिलेर खां को तो पुरंधर दुर्ग घेरने को भेजा और स्वयं सिंहगढ़ को घेर रायगढ़ तक अपनी सेना फैला दी। जब शिवाजी अपने समुद्री बेड़े की सहायता से वार्सलोवा आदि को लूटने के पीछे राय-गढ़ लौटे तो जयसिंह और दिलेर खां की अध्यक्षता में भारी मुगल सेना देखी। शिवाजी बड़ी चिन्ता में पड़ गये। कारण, एक तो वे हिन्दुओं से हिन्दुओं का सिर कटाने के विरोधी थे और दूसरे जयसिंह युद्ध-कला-विशारद और उनकी राजपूत सेना बड़ी लड़ाकी थी। ऐसे सेनाध्यक्ष पर विजय पाना भी ऐसी वैसी बात न थी। जयसिंह ने अपना काम शुरू किया था और दिलेर खां पुरंधर के अध्यक्ष मुरार बाजी देशपांडे से घोर युद्ध कर रहा था। कई दिनों तक जी-होमकर लड़ने के पीछे मुरार बाजी मारे गये और पुरंधर पर दिलेर खां का अधिकार हो गया। उसके बाद और भी कई दुर्ग मरहठों के हाथ से निकल गये। उधर शिवाजी को उनकी अधिष्ठात्री देवी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि जयसिंह पर विजय पाना असम्भव है। इसलिये शिवाजी ने अपने विश्वासी मंत्री रघुनाथ पन्त के द्वारा जयसिंह से सन्धि-प्रस्ताव किया और संधि हो गयी। सन्धि के पहिले शिवाजी ने राजा जयसिंह से मिल कर बातचीत भी की थी और उन्होंने शिवाजी को विश्वास दिलाया था कि "जब तक मैं हूं औरङ्गजेब आपके साथ किसी प्रकार का कुव्यवहार नहीं कर सकते।" राजा जयसिंह से मिलने के दूसरे ही दिन शिवाजी ने दिलेर खां से मिल कर पुरंधर किले की तालियां

अपने हाथ से उसे सौंप दीं। जयसिंह से उनकी जो सन्धि हुई उसके अनुसार यह तय हुआ कि मुगल राज्य की छीनी हुई कुल जमीन लौटा देंगे। अहमद नगर के जो बत्तीस किले अधिकार में किये थे उनमें से बारह जागीर की भांति रख कर बाकी बीस मुगल राज्य को दे देंगे। तीसरी शर्त्त यह थी कि शिवाजी के अष्टवर्षीय बालक सम्भाजी पांच-हजारी मनसबदार नियत किये गये। चौथी शर्त के अनुसार शिवाजो को बीजापुर राज्य पर कुछ जागीर के अधिकार मिले जिसके बदले में शिवाजी की ओर से तीन लाख वार्षिक की किश्त से ४० लाख पगोड़ा की भेंट राजकीय कोष में देने की प्रतिज्ञा को गयी।

सन्धि होने के पीछे राजा जयसिंह ने बीजापुर पर चढ़ाई की और शिवाजी ने भी उनका साथ दिया। अब राजा जयसिंह शिवाजी की वीरता के कारण उनसे बड़ा प्रेम करने लगे थे। शिवाजी ने इस चढ़ाई में रुद्रमण्डल दुर्ग पर अपने मावले सरदारों की सहायता से बड़ी कठिनाई से अधिकार किया, क्योंकि यह बड़े दुर्गम पर्वत पर स्थित था। जिस समय दुर्ग विजय की खबर जयसिंह को मिली तो उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा कि मुझे इतनी जल्दी इस दुर्ग पर अधिकार हो जाने की आशा बिल्कुल ही नहीं थो।

शिवाजी की दिल्ली-यात्रा

जिस समय राजा जयसिंह शिवाजी की सहायता से बीजापुर सर करने में लग रहे थे उसी समय औरङ्गजेब ने स्वयं अपने हाथ से शिवाजी को एक चिट्ठी लिखी जिसमें उनकी वीरता की सराहना करते हुए एक कीमती दुशाला भेजा।

फिर औरङ्गजेब ने उन्हें लिखा कि आप दिल्ली आवें जिसमें दर्बार में बुला कर आपका आदर-सत्कार किया जाय और फिर आदर सहित दक्षिण लौटने की आज्ञा दी जाय। राजा जयसिंह ने शिवाजी को विश्वास दिलाया कि वे उनकी कुशलता के जिम्मेवार हैं। इस विश्वास पर शिवाजी दिल्ली जाने के लिए तैयार हो गये। अपने आगमन की सूचना देने के लिए उन्होंने रघुनाथ पन्त को पहिले ही दर्बार में भेज दिया और अपने इलाके तथा किलों और सेना की समुचित व्यवस्था करके सन् १६६६ के वसन्तकाल में पांच सौ सवार और एक हजार पैदल सेना लेकर शिवाजी स्वयं दिल्ली की ओर अपने पुत्र सम्भाजी तथा अन्य एक-दो विश्वस्त जनों के साथ रवाना हुए। यथासमय वे दिल्ली के निकट पहुंचे और दिल्ली से ६ कोस पर डेरा डाल दिया। राजा जयसिंह ने शिवाजी से बड़े आदर सत्कार की प्रतिज्ञाएं की थीं और वे इस विचार से गये थे कि औरङ्गजेब से उसके दक्षिणी राज्य का पट्टा प्राप्त करूँगा। पर शीघ्र ही उनकी आंखें खुल गयीं। एक दिन शाम को शिवाजी अपने नौ वर्ष के बालक सम्भाजी से कुछ बातें कर रहे थे कि राजा जयसिंह के बेटा रामसिंह केवल एक साधारण अफसर के साथ डेरे में उनके पास आये। शिवाजी को औरङ्गजेब के इस वर्त्ताव पर अत्यन्त क्रोध आया, पर उसे प्रकट करने का वह उपयुक्त अवसर न था। इससे उन्होंने उसे छिपाकर रामसिंह से पूछा कि, "दिल्ली में प्रवेश करने के बारे में आपकी क्या राय है?" रामसिंह ने उत्तर दिया कि, "जहां तक मैं समझता हूँ दिल्ली में जाने से कोई विपत्ति आपके ऊपर न आवेगी। पिता ने स्वयं मुझे कहा है और इसमें दास की ओर से कोई त्रुटि न

होगी। पिता का वचन मिथ्या न होगा और आप निरापद स्वदेश में पहुंच जायेंगे।" इस पर शिवाजी दिल्ली में घुसे। एक एक करके जब प्राचीन चिन्ह उन्हें दिखाये जाने लगे तब शिवाजी को हिन्दुओं के प्राचीन गौरव के चित्र सामने दिखाई पड़ने लगे। उन्हें बार बार हिन्दुओं के पतन से वेदना होने लगी।

दिल्ली की सजावट इस अवसर पर निराली थी। वैसे तो औरंगजेब ने जिस प्रकार क्रूरता के साथ अपने बाप और भाइयों का बध किया था उससे उसकी राक्षसी प्रकृति का परिचय सभी को प्राप्त है, पर देखने में वह पूरा फकीर जान पड़ता था। माला दिन भर उसके हाथ में रहती थी। नमाज और रोजे का वह बड़ा पाबन्द था। गाने को वह हराम समझता था। यहां तक कि गाना बजाना बिल्कुल ही बन्द था। परन्तु शिवाजी के दिल्ली-प्रवेश के अवसर पर उसने अपनी साधुता और सरलता एकदम छोड़ दी थी और राज्य की सारी शक्ति दिल्ली को सजाने में लगा दी थी। इससे उसका अभिप्राय यह था कि जिससे शिवाजी जैसा जंगली लुटेरा अपनी आंखों मुगल साम्राज्य का वैभव देख कर दंग हो जाय और फिर कभी उसकी ओर आंख न फेर सके। इस अवसर के उपलक्ष्य में दीवानखास में दर्बार का प्रबन्ध किया गया था जहां साम्राज्य के बड़े बड़े दरबारी अपने वेष में उपस्थित थे। शिवाजी दर्बार में घुसे और औरङ्गजेब को भेंट दी। औरंगजेब ने भेंट ग्रहण करके शिवाजी को पंचहजारी कर्मचारियों की श्रेणी में बैठने की आज्ञा दी इस अपमानपूर्ण व्यवहार से महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के क्रोध का ठिकाना न रहा, पर वे समय

विचार कर अपने को वश में कर केवल इतना ही बोले कि, "क्या शिवाजी पंचहजारी? जब सम्राट् महाराष्ट्र देश में जायेंगे तब देखेंगे कि शिवाजी के अधीन ऐसे कितने पंच-हजारी रह कर कैसे बल से खड्ग धारण करते हैं।" उस समय औरङ्गजेब कुछ न बोला और दर्बार भंग कर दिया। शिवाजी के लिए जो स्थान ठीक किया गया था वे वहां पहुंचाये गये। पीछे औरङ्गजेब ने कहला भेजा कि शिवाजी ने भरे दर्बार में बादशाह के सामने जो अपमानपूर्ण भाव प्रकट किया है उसका उन्हें यह दण्ड दिया जाता है कि अब भविष्य में राज दर्बार में उन्हें स्थान न मिलेगा। औरङ्गजेब ने अन्त में यह आज्ञा निकाली कि शिवाजी के निवास-स्थान पर पहरा रखा जाय और जहां शहर में जायें पहरेदार साथ रहें। इस तरह शिवाजी दिल्ली में नजरबन्द रखे गये। एक अँग्रेज इतिहास-वेत्ता तो यह भी लिखता है कि औरङ्गजेब ने शिवाजी को कत्ल कर डालने का प्रबन्ध किया था, पर रामसिंह को पता चल गया और उन्होंने शिवाजी को खबर दे दी। इससे शिवाजी ने स्वयं बीमारी का बहाना कर लिया जिससे औरङ्गजेब ने अपना नीच विचार त्याग दिया, क्योंकि उसने सोचा कि यह तो बिना औषधि के ही व्याधि मिटती दिखाई पड़ती है।

परन्तु नीतिज्ञ शिवाजी ने ऐसे संकट-काल में धैर्य हाथ से नहीं जाने दिया और वे किसी तरह दिल्ली से भाग निकलने की युक्ति करने लगे। बीमार पड़ने के पहिले ही शिवाजी ने औरङ्गजेब को पत्र लिख कर अपने साथ आये हुए सब सैनिकों को दक्षिण लौटाने की आज्ञा ले ली थी और शिवाजी सबको यथो-चित आदेश देकर विदा कर चुके थे। जब उन लोगों से शिवाजी

के साथ औरङ्गजेब के व्यवहार की बात मरहठों ने सुनी तो उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। किन्तु नीतिज्ञ तानाजी ने उन्हें उस समय मुगलों से छेड़छाड़ करने से रोका, क्योंकि उससे शिवाजी का प्राण हरण किये जाने का भय था। तानाजी सबको समझा बुझा कर कुछ अनुचरों के साथ दक्षिण से शिवाजी को मुक्त कराने के लिए दिल्ली को रवाना हुए। तानाजी दिल्ली पहुंच कर अपने पचीस मावलों के साथ मुसलमानों की तरह शहर में रहने लगे। उधर शिवाजी की बीमारी रोज बढ़ने लगी और कितने ही वैद्य उनकी चिकित्सा के लिए उनके स्थान पर आने लगे। एक दिन दिल्ली भर में शिवाजी ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि अब अवस्था इतनी खराब हो गयी है कि इस बीमारी से बचना कठिन है। शाम के वक्त तानाजी हकीम के वेष में राजमहल के पास पहुंचे। रक्षकों के पूछने पर उन्होंने कहा कि बादशाह के हुक्म से मरीज की दवा करने जा रहा हूँ, तब वे भीतर जाने पाये। वहां कुछ देर के मनोविनोद के पीछे तानाजी ने अपना असली वेष शिवाजी को दिखा कर उनके भाग निकलने के लिए जो प्रबन्ध किया था वह सब कह सुनाया। भागने के दिन, समय आदि का निश्चय कर तानाजी वापस आये। तानाजी से किये हुए निश्चय के अनुसार एक दिन शिवाजी ने यह बात शहर में फैला दी कि अब शिवाजी अच्छे हैं। फिर उन्होंने दान पुण्य करना शुरू किया और स्वस्थ होने के उपलक्ष्य में बड़ी बड़ी टोकरियों में मिठाइयां भर-भर कर वे मन्दिरों और मसजिदों में गरीबों को बांटने के लिए भेजने लगे। वे टोकरियां और खांचे कई कई आदमी उठा कर ले जाते थे। कई दिन लगातार ऐसा होता रहा और एक दिन,

अपनी सी आकृति वाले एक साथी को अपनी सोने की अंगूठी पहिना कर लिटा दिया और स्वयं एक खांचे में मिठाइयों के बीच बैठ और दूसरे खांचे में अपने बेटे संभाजी को बैठा कर वे शहर से बाहर निकल गये। दिल्ली के बाहर पहिले से ही घोड़े तैयार थे, उन पर सवार हो वे रात में ही चल पड़े और दूसरे दिन मथुरा पहुंच गये, जहां दाढ़ी मूंछ मुड़ा कर साधुवेश बना वे प्रयाग पहुँचे। वहां सम्भाजी को एक दक्षिणी ब्राह्मण के घर सुरक्षित कर काशी जाने वाले वैरागियों की एक जमात के साथ चलने लगे। एक स्थान पर एक मुसलमान सेनाध्यक्ष ने उन्हें पकड़ लिया और तलाशी लेने लगा। शिवाजी ने उसे अपना पूरा परिचय दे दिया और कहा कि चाहे मेरे पास के ये दो बहुमूल्य हीरे ले लो और चाहे मेरा शिर काट कर औरङ्गजेब के पास भेज दो। वह लोभ में फँस गया और हीरे लेकर शिवाजी को छोड़ दिया। शिवाजी अब बड़ी फुर्ती से काशी पहुंचे जहां से बिहार, पटना और चांदा के रास्ते से वे दक्षिण में पहुँच गये। जब वे रायगढ़ पहुँचे तो देखा कि उनके राज्य की व्यवस्था वैसी ही अच्छी बनी हुई है जैसी दस महीने पहिले वे छोड़ गये थे। महाराष्ट्र में उनके छूटने से जैसा हर्ष हुआ वैसा ही औरङ्गजेब के हृदय पर उनके भाग निकलने से वज्रपात हुआ। अब शिवाजी ने अपने सेनापति से सलाह कर कहा कि जब औरङ्गजेब ने कपट करके एक वर्ष पहिले की हुई संधि तोड़ दी, तब हम भी पुनः अधर्मियों से लड़ेंगे। युद्ध आरम्भ हुआ और धीरे धीरे खोये हुए सब किलों और स्थानों पर फिर शिवाजी का अधिकार होने लगा। राजा जयसिंह अब संसार में नहीं रहे थे इसलिये शिवाजी का रास्ता

रोकने वाला कोई नहीं था। शिवाजी ने संधि द्वारा जो कुछ छोड़ा था उसे फिर अपने अधिकार में कर लिया। एक बार यशवन्तसिंह और मोअज्जम फिर दक्षिण भेजे गये, पर उनसे कुछ करते धरते न बना। उधर औरङ्गजेब ने अपने मन में एक प्रकार की हार मान ली। उसने शिवाजी के पास एक सनद भेजी जिसमें उन्हें स्वाधीन राजा मान लिया था और जुनार तथा अहमद नगर के सिवा बरार में उन्हें एक जागीर दी। पूना, चाकन और सूपा की पुरानी जागीरें भी शिवाजी के अधिकार में आ गईं, लेकिन सिंहगढ़ और पुरंधर उन्हें नहीं मिल सके थे। सन् १६६७ के बाद मुगल सेना को गोलकुंडा और बीजापुर से लड़ना पड़ा था जिसमें शिवाजी ने भी मुगल सूबेदार मोअज्जम को मदद दी थी। इसीसे १६६७ ई० में गोलकुंडा और बीजापुर से 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' लेने का अधिकार शिवाजी को दिला दिया गया। इसके सिवा दोनों राज्यों ने तीन तीन लाख रुपया वार्षिक कर भी शिवाजी को देना स्वीकार किया। लेकिन १६६६ में औरङ्गजेब ने अपने पुत्र को लिखा कि जैसे भी हो शिवाजी को कैद करो। प्रताप-राव गुज्जर को औरङ्गाबाद में इस बात का पता लग गया। वे चुपचाप वहां से चलते बने और शिवाजी को सब हाल बता दिया। इससे दो वर्ष का मेल फिर टूट गया और शिवाजी फिर मुगलों से भिड़ गये।

सिंहगढ़ विजय

१६६७ ई० से दो वर्ष तक शिवाजी अपने राज्य के प्रबन्ध में लगे रहे और इस बीच कोई लड़ाई नहीं हुई। परन्तु औरङ्ग-

जेब की उक्त चाल के कारण १६७० ई० में शिवाजी फिर मुगलों से भिड़ पड़े। राजा जयसिंह से संधि करने के समय से ही सिंहगढ़ मुगलों के हाथ में था और मेवाड़ से निकाला हुआ उदयभानु नामक सरदार इस किले की रक्षा में था। औरङ्गजेब ने उसे सिंहगढ़ की खास तौर पर रक्षा करने के लिए भेजा था। उदयभानु ने किले के भीतर और बाहर बड़ा कड़ा पहरा बैठा दिया था। इसके पहिले किले का प्रबन्ध राजा जी के हाथ में था। एक तो वैसे ही सिंहगढ़ बड़े दुर्गम स्थान पर था, दूसरे उदयभानु ने खास तौर पर उसकी रक्षा का प्रबंध किया था, इससे उसका जीतना महा कठिन काम था। पर माता जीजीबाई शिवाजी से बार बार सिंहगढ़ लौटाने का आग्रह कर रही थीं, निदान माघ महीने के अन्त में वीर तानाजी एक हजार मावला वीरों को लेकर सिंहगढ़ विजय करने को चल पड़े। साथ में उनके भाई सूर्यजी और दूर के नाते के शेलार मामा भी थे। इन सब ने वहां पहुंच कर पहिले तो रायाजी को मिला लिया। पांच छः दिन तक भेद लेने के पश्चात् रात में दुर्ग पर चढ़ने के लिए जगह निकाली गई। रस्सी की सीढ़ियों द्वारा तानाजी के साथ ३०० योद्धा किले पर चढ़े और बाकी रस्सी टूट जाने से नहीं चढ़ सके थे। तानाजी उन योद्धाओं सहित आगे बढ़े और जो सामने आते गये उन्हें काटते आये। किले में भारी हलचल मच गई और घोर घमासान मच गया। तानाजी के ऊपर उदयभानु टूट पड़ा। दोनों में खूब तलवार चली, पर अन्त में ढाल कट जाने से तानाजी उदयभानु की तलवार के शिकार हो गये। तुरन्त तानाजी की मृत्यु की खबर दुर्ग भर में फैल गई। यह सुन दूसरी ओर युद्ध करते हुए शेलार भी

वहीं आ पहुंचे और उदयभानु को अपनी तलवार के घाट उतार दिया। तानाजी की मृत्यु से मावलों का धैर्य छूटने लगा और सूर्य ने देखा कि वे भागने के लिए रस्से की सीढ़ियों की ओर बढ़ रहे हैं तो उन्होंने झट से रस्से ही काट दिये। सूर्य जी ने उत्तेजनापूर्ण शब्दों से उन्हें फिर उत्तेजित किया। इस पर महाराष्ट्र वीरों ने जी-होमकर युद्ध किया और दुर्गस्थ सेना को हरा दिया। सूर्यजी ने झट किले में शिवाजी की दुहाई फिरवा दी और घोषणा की कि जो हथियार रख देगा वह न मारा जायगा। सब ने हथियार रख दिये और सिंहगढ़ पर शिवाजी का अधिकार हो गया। शिवाजी भी सिंहगढ़ के किले में पहुंचे, पर तानाजी के मारे जाने के कारण वे रोने और विलाप करने लगे। शेलार के बहुत समझाने पर उनका विलाप रुका और कहने लगे कि, "गढ़ आया पर सिंह गया। भवानी तेरी इच्छा। सूर्यजी! तुम यही समझो कि शिवाजी मर गया और तानाजी अभी जीवित हैं। अपनी जानकी माता से भी यही कहना कि जैसा मेरा पुत्र सम्भाजी है वैसा ही तानाजी का पुत्र रायवा भी होगा।" इस प्रकार तानाजी को खोकर सन् १६७० की फाल्गुन कृष्णा नवमी को सिंहगढ़ पर शिवाजी का अधिकार हुआ। सिंहगढ़ विजय के पश्चात् वीर मरहठों ने पुरंधर, माहुली, लोहगढ़ आदि दुर्गों पर भी अपना अधिकार दृढ़ कर लिया। सूरत पर एक बार फिर हमला किया गया। और इस बार भी शिवाजी को वहां बहुत सा धन मिला। जब वे सूरत लूट कर लौट रहे थे तब मुगल सेना ने राह में उन्हें घेर लिया। पर वह मार भगाई गई और लूट का माल रायगढ़ पहुँचा दिया गया। प्रतापराव गुज्जर ने

खानदेश पर चढ़ाई करदी और बरार पर धावे मारे। 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' खूब वसूल हुई। सन १६७१ में मोरोपंत ने बागलान के सालहर दुर्ग पर अधिकार किया। बागलान को एक बार औरङ्गजेब ने स्वयं जीता था। मोरोपन्त ने दुर्ग को छीन लिया इससे मुगलों को बड़ा क्रोध आया। मुगलों ने उसे फिर छीनने के लिए भारी आक्रमण किया और मोरोपन्त किले के भीतर से लड़ने लगे। प्रतापराव ने मुगलों के पीछे से आक्रमण कर दिया जिससे दोहरी मार खाकर मुगल सेना भाग खड़ी हुई। ऐसी हार मरहठों से मुगल सेना ने पहिले कभी नहीं खाई थी। सन् १६७३ में पन्हाला दुर्ग फिर ले लिया गया और अन्नाजी दत्तू ने हुबली को लूट लिया। बिदनौर के राजा ने कर देना स्वीकार कर लिया। सन् १६७४ में बीजापुर ने एक बार फिर शिवाजी पर चढ़ाई की, पर प्रतापराव ने उस सेना को मार भगाया। इस तरह अब शिवाजी की प्रभुता उत्तर में सूरत तक फैल गई और दक्षिण में बिदनौर और हुबली तक उनकी शक्ति बढ़ गई। बरार, बीजापुर और गोलकुंडा तक उनका प्रताप छा गया। ताप्ती के दक्षिण के मुगल प्रान्त भी शिवाजी को सरदेशमुखी देने लगे।

शिवाजी का राज्याभिषेक

इस तरह महाप्रतापी मुगल साम्राज्य तथा दक्षिण के दो प्रबल यवन राज्य बीजापुर और गोलकुंडा को पछाड़ कर वीर शिवाजी ने हिन्दू राज्य स्थापित किया। अब उन्होंने स्वतंत्र छत्र धारण कर नियम-पूर्वक हिन्दू राज्य स्थापित करना उचित समझा और सन् १६७४ के आनन्द नाम संवत् की ज्येष्ठ शुक्ला

त्रयोदशी बृहस्पतिवार के दिन रायगढ़ में शिवाजी का राज-तिलक हुआ। राजतिलक होने पर उनका नाम 'छत्रपति महाराज शिवाजी भोंसले' हुआ। उस दिन से शिवशक नाम का एक शाका चलाया गया जो अब तक कोल्हापुर के राजघराने में चला आता है। अभिषेक के समय भिन्न भिन्न राज्यों से दूत आये थे। सूरत के अंग्रेज प्रेसीडेण्ट ने भी अपना एक प्रति-निधि भेजा था जिसने शिवाजी तथा सम्भाजी को भेंटें दी थीं। अंग्रेजों को शिवाजी के राज्य में व्यापार करने की आज्ञा मिली। उन्होंने शिवाजी को २॥) सैकड़ा महसूल देना और उनके सिक्के काम में लाना स्वीकार किया। राज्याभिषेक के उत्सव पर गोब्राह्मण-रक्षक शिवाजी ने अपने वज़न के बराबर तौल कर सोना ब्राह्मणों को तुलादान करके दिया था।

अन्तिम दिन

शिवाजी महाराज के सिंहासन पर बैठने के पन्द्रह दिन पीछे ही माता जीजीबाई का स्वर्गवास हो गया और भारत एक आदर्श वीर-माता से रहित हो गया जिसने शिवाजी जैसे वीर को पैदा ही नहीं किया, बल्कि कठिन समयों में उत्साहित कर प्रबल मुगलशाही का गर्व खर्व कराके अपने वीर पुत्र के द्वारा पुनः हिन्दू राज्य स्थापित कराया। कुछ ही दिनों बाद औरङ्ग-जेब ने गोलकुंडा पर विजय पाने को सेना भेजी। गोलकुंडा के नवाब ने छत्रपति शिवाजी से सहायता मांगी। सहायता देने के हेतु रायगढ़ से हम्मीर राव भेजे गये। उन्होंने मुगल सेना को मार भगाया और गोलकुंडा कुछ दिनों के लिए और बचा रहा। कुछ समय बाद स्वयं शिवाजी ने गोलकुंडा की

सहायता के लिए तंजौर पर चढ़ाई की और विलौर तथा जिंजी को जीतते हुए मैसूर तक पहुंच गये। फिर बीजापुर को कम जोर जान मुगलों ने उसे ग्रसना चाहा। नवाब के सहायता मांगने पर शिवाजी ने वहां भी सेना भेजी। इस बार मुगल सेना की बड़ी दुर्गति की गई। सूरत से बुरहानपुर तक पड़ी हुई मुगल सेना में त्राहि त्राहि मच गई और अन्त में उसे बीजापुर छोड़ने को लाचार होना पड़ा। यह घटना सन् १६७६ ई० की है। परन्तु जिस समय शिवाजी की सेना आक्रमणकारी मुगल सेनापति दिलेर खां से लड़ने गई उसी समय उन्हें मालूम हुआ कि दिलेर खां ने सम्भाजी को अपने राज्य का एक भाग देकर उन्हें मरहठों का राजा प्रसिद्ध कर दिया है। सम्भाजी भी शत्रु के जाल में फंस गये और भूपालगढ़ पर धावा करके उस पर अधिकार कर लिया था, इसलिये सम्भाजी को लाने के लिए शिवाजी पन्हाला की ओर गये। उधर जब औरङ्गजेब ने अपने सूबेदार मोअज्जम और सेनाध्यक्ष दिलेर खां की बीजापुर की हार आदि का समाचार सुना तब उसने दोनों को वापस बुला लिया और उनकी जगह खानजहां को सूबेदार करके भेजा। सम्भाजी के विषय में औरङ्गजेब की यह आज्ञा हुई कि उसे कैद करके दर्बार में भेजा जाय। परन्तु सम्भाजी किसी तरह भाग निकले और शिवाजी के हाथ आ गये। छत्रपति शिवाजी ने अपने बेटे सम्भाजी को पन्हाला के किले में कैद कर दिया जिसमें उनका जोश ठंढा पड़ जाय और अपने अयोग्य कर्म के लिए उन्हें लज्जा मालूम हो। उधर बीजापुर राज्य ने भी स्वीकार कर लिया कि जितनी भूमि शिवाजी ने जीत ली है और जो उन्हें अपने पिता की जागीर के

रूप में मिली है उस सबके शिवाजी राजा हैं। इस तरह सन् १६८० ई० में शिवाजी चार सौ मील लम्बे राज्य के मालिक हो गये थे। कर्नाटक का दक्षिणीय अर्द्धभाग भी इनके अधिकार में आ गया था। तंजौर भी इनके राज्य में था। नर्मदा से कोंकण तक इन्हीं का राज्य था। इनकी सेना में इस समय तीस हजार सवार और चालीस हजार पैदल सिपाही थे।

मृत्यु

सन् १६८० ई० के मार्च महीने के अन्तिम दिनों में शिवाजी के घुटनों में पीड़ा शुरू हुई। साथ में सूजन भी थी। यहां तक कि ज्वर भी आना शुरू हो गया जिससे कि सात दिन में ही हिन्दूजाति का छत्रपति ५ अप्रेल को सदा के लिए अपनी जाति को अनाथ कर के स्वर्ग सिधार गया। मृत्यु के समय शिवाजी की अवस्था कुल ५३ वर्ष की ही थी। उनके दो पुत्र थे। बड़े का नाम सम्भाजी और छोटे का राजाराम था।

शासन-व्यवस्था

छत्रपति शिवाजी यद्यपि पढ़े लिखे नहीं थे, पर जैसी शासन-व्यवस्था उन्होंने कर रखी थी वैसी तत्कालीन भारत-व्यापी मुगल साम्राज्य की भी नहीं थी। छत्रपति का राज्य दो भागों में बँटा हुआ था, एक पहाड़ी और दूसरा मैदान। पहाड़ी भाग में पहाड़ी दुर्ग थे जिनकी व्यवस्था एक विशेष ढँग से होती थी और मैदान प्रान्तों तथा महालों में बँटा हुआ था। एक बात और थी, वह यह कि जो इलाका शिवाजी के
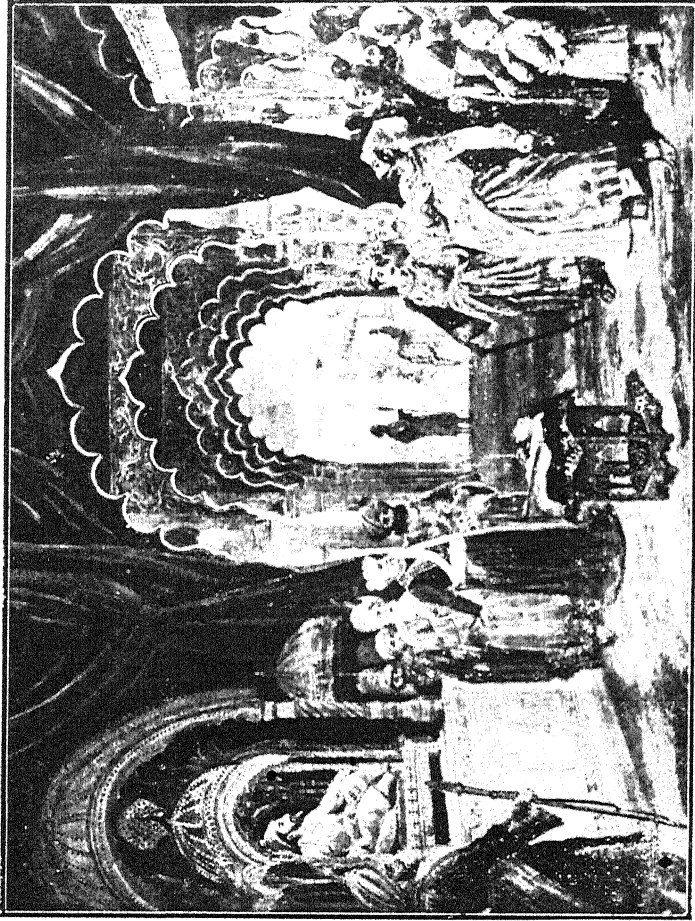
औरङ्गजेब के दर्बार में शिवाजी ।

पूरे प्रबन्ध में था वह शिवजिया कहाता था और जो इलाका केवल 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' दिया करता था वह मुगलिया कहलाता था। जहां केवल चौथ से सम्बन्ध था वहां शिवाजी केवल मालगुजारी से ही सम्बन्ध रखते थे, और बातों के प्रबन्ध से उनका कोई वास्ता नहीं था। शिवाजी ने राज्य की सुव्यवस्था के लिए आठ विभागों में उसका प्रबन्ध बांट दिया था। प्रत्येक विभाग का प्रधान उनकी राजसभा का सदस्य होता था। उन अष्ट-प्रधानों की राजसभा की अनुमति बिना राज्य का कोई प्रबन्ध कार्य नहीं होता था। प्रत्येक विभाग के प्रधान की उपाधि भी भिन्न भिन्न थी।

१—पेशवा—यह प्रधान राजमंत्री की उपाधि थी। यह पदाधिकारी राजसिंहासन के नीचे दाईं ओर अव्वल में जगह रखता था।

२—सेनापति—ये सेना के प्रधान अध्यक्ष थे और सिंहासन के बायीं ओर सब से प्रथम बैठते थे।

३—पंत अमात्य—ये कोषाध्यक्ष होते थे जो पेशवा के बाद बैठते थे।

४—पंत सचिव—इनका काम कोष निरीक्षण करने का था। ये तीसरे नम्बर में बैठते थे।

५—मंत्री—ये महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी होते थे।

६—सीमन्त—ये परराष्ट्र सचिव होते थे और सेनापति के नीचे बायीं ओर बैठते थे।

७—पण्डित राव—जो न्यायशास्त्री भी कहे जाते थे। इनका काम शास्त्रों से व्यवस्था देने का था। इनकी दी हुई व्यवस्था ही प्रामाणिक मानी जाती थी।

८—न्यायाधीश—इनका आसन पण्डितराव के पास लगता था और प्रधान न्यायाध्यक्ष थे।

इनमें से कोई पद खानदानी नहीं होता था और समय समय पर इन पदों पर अधिकारी नियुक्त होते रहते थे।

महाराज शिवाजी के पास २८० दुर्ग (किले) थे। वे दुर्गों का महत्व खूब समझते थे और उनकी रक्षा का उन्हें पूरा ध्यान रहता था। हर एक दुर्ग एक एक मरहठा 'हवलदार' के अधीन रहते थे। इस हवलदार के नीचे किले की दीवार के हर एक हिस्से के नाम से सहायक होते थे जिनके ऊपर प्रत्येक दीवार की रक्षा का भार होता था। प्रत्येक किले में एक ब्राह्मण धन एवं आय-व्यय सम्बन्धी काम के प्रबन्ध के लिए और एक प्रभु अन्नादि के प्रबन्ध के लिए होते थे। दुर्गों के नीचे जो जंगल होता था उसका भी समुचित प्रबन्ध होता था और दुर्ग की अवस्था के अनुसार उसमें आवश्यक सेना रखी जाती थी।

पैदल सेना में दस सिपाहियों के ऊपर एक 'नायक' और पांच नायकों के ऊपर एक 'हवलदार' रखा जाता था। दो हवलदारों का अफसर एक 'जुमलेदार' होता था और दस जुमलेदार 'एक हजारी' की अध्यक्षता में होते थे अर्थात् एक हजार सिपाहियों के ऊपर एक हजारी होता था। सात हजार सिपाहियों का अध्यक्ष 'सरनोवत' कहलाता था।

सवार सेना दो तरह की थी—एक 'बारगीर' और दूसरी 'सिलीदार'। इनमें से पहले प्रकार के सवारों को घोड़े शस्त्रादि राज्य से मिलते थे और सिलीदारों को अपने खर्च से घोड़े और हथियार रखने पड़ते थे। पचीस सवारों के ऊपर

एक हवलदार और पांच हवलदारों के ऊपर एक जुमलेदार होता था। दस जुमलेदारों के ऊपर एक हजारी और पांच हजारियों के ऊपर एक 'पंचहजारी' होता था। पंचहजारी के ऊपर 'सरनोवत' होता था। प्रत्येक उच्च सेनाध्यक्ष के पास एक ब्राह्मण लेखक होता था। वेतन सब अधिकारियों और कर्मचारियों को नकद और योग्यतानुसार मिलता था।

इन दो प्रकार की सेनाओं के सिवा शिवाजी के पास सामुद्रिक संग्राम के लिए एक बहुत मजबूत 'बेड़ा' भी था जिससे वे जल की राह भी शत्रु पर आक्रमण करते और उसे लूटते थे। उस समय पुर्तगीजों और अँग्रेज़ों आदि के पास भारत में जो बेड़े थे, शिवाजी का बेड़ा उनसे कम मज़बूत नहीं था।

महाराज का राज्य १४ प्रान्तों में बँटा था—(१) मावल जिसमें वर्तमान मावल, सासवद, जूनार तथा खेद के ताल्लुके शामिल थे। (२) सितारा—जिसमें वाई, सितारा तथा कराद के ताल्लुके थे। (३) पन्हाल (कोल्हापुर का पश्चिमी प्रदेश) (४) दक्षिणी कोंकण वर्त्तमान रत्नगिरि प्रदेश। (५) थाना—उत्तरी कोंकण (६) त्रिम्बक और (७) बागलान—ये दोनों वर्त्तमान नासिक प्रदेश में हैं। (८) वाणगढ़—वर्त्तमान धारवार (९) बदनौर (१०) कोल्हर (११) श्रीरंग पट्टन (ये तीनों मैसोर राज्य में हैं) (१२) कर्नाटक (१३) वीलोर (आरकाट प्रदेश) (१४) तंजोर।

महाराज ने अपने दुर्गों को प्रान्तों में बांट दिया था जिससे प्रान्तों की पूरी रक्षा होती थी। प्रान्त महालों में और

महाल ग्रामों में बँटे हुए थे। प्रत्येक प्रान्त एक सूबेदार के सुपुर्द होता था। कर एवं दण्ड सम्बन्धी शासन उसी के हाथ में होता था। धन सम्बन्धी मुकद्दमे ग्राम-पंचायतों द्वारा तय किये जाते थे। अष्ट-प्रधान-सभा ही सूबेदारों तथा अन्य पदाधिकारियों को नियुक्त करती थी। लगान वसूल करने का काम करने वालों को वेतन दिया जाता था और सारी भूमि की नाप ठीक रखी जाती थी। साल में हिसाब होता था। लगान लगाने के पहिले खेत अच्छी तरह नाप लिये जाते थे और रजिष्टरों में दर्ज कर लिये जाते थे। जो किसान अन्न की उपज में से लगान देना चाहते थे उनसे उपज के पांच में से दो भाग से अधिक नहीं लिया जाता था। वह अन्न बेच कर खजाने में रकम दाखिल हो जाती थी। अकाल आदि के समय किसानों को तगाई [तकावी] दी जाती थी जिसे वसूल करने में उन्हें कष्ट नहीं दिया जाता था। शिवाजी ने जागीर की प्रथा तोड़ दी थी। जमींदार तो थे पर उन्हें किले आदि रखने की आज्ञा नहीं थी। जागीरें मन्दिरों, पाठशालाओं आदि के लिए दी जाती थीं जिनकी रक्षा सरकार से होती थी। जब कोई नया सिपाही भर्त्ती होने आता था तब उसे शिवाजी के एक सैनिक से सिफारश करानी पड़ती थी। सिफारश इस बात की होती थी कि यह इस विश्वास के योग्य है कि राज्य की सेना का काम करते समय जो धन इसके हाथ लगेगा उसमें से यह कुछ चुरावेगा नहीं, बल्कि कोष में जमा कर देगा। महाराज शिवाजी के यहां गुप्तचरों का भी एक विभाग था। इसमें वे ही मनुष्य रखे जाते थे जो अत्यन्त विश्वासपात्र होते थे। इस विभाग के द्वारा छत्रपति शिवाजी की शत्रु सेना की रत्ती रत्ती

शिवाजी और क़िलेदार की कन्या।

भर बातें ठीक समय पर किस तरह मिल जाया करता थीं, यह आपके इस जीवन चरित्र के पढ़ने वालों से छिपा नहीं रहा है। घूसखोरी का तो कहीं नाम-निशान भी नहीं था।

शिवाजी का चरित्र

छत्रपति शिवाजी को यद्यपि विधर्मी लेखकों ने डाकू, लुटेरा और मुसलमान लेखक खफी खां ने तो 'कुत्ता' तक लिखने में भी कुछ संकोच नहीं किया है। पर उनमें से किसी को भी उनके चरित्र के विषय में आक्षेप करने का साहस नहीं हुआ है। हो भी कैसे, जब उनका चरित्र एकदम निर्मल और दोष-हीन था। वे यवनों के शत्रु थे और उनके अत्याचारों का बदला चुकाने तथा गो-ब्राह्मण और हिन्दूधर्म की रक्षा के लिए उन्होंने जीवन भर लूट-मार से काम लिया था। परन्तु चरित्र के वे बड़े पक्के थे। चालीस वर्ष के समय में न जाने कितनी बार शत्रु की स्त्रियां उनके हाथों पड़ीं, लेकिन उनके साथ उन्होंने सदा अपनी सगी बहिन का सा वर्त्ताव किया था। एक बार की बात है कि मरहठों ने जब कल्याण दुर्ग पर अधिकार कर लिया तब नीलपंत ने दुर्ग के अध्यक्ष की रूपवती कन्या को बन्दी कर लिया। वह अत्यन्त रूपवती थी। उसे लेकर वे शिवाजी के पास पहुंचे और कहा कि यह मौलाना की कन्या है, मैं इसे महाराज के लिए लाया हूँ। शिवाजी उन पर रुष्ट होकर बोले कि पन्त जी! मुझे क्या विषयान्ध समझ कर इसे मेरे पास लाये हो? यदि हम पर-स्त्री ग्रहण करने लगेंगे तो राज्यकार्य नहीं कर सकते। हमारा यह धर्म नहीं कि पर-स्त्री पर अत्याचार करें। यह कन्या मेरी भगिनी के तुल्य है। यह कह उसे

उसके बाप के पास वापस भिजवा दिया। एक बार उनके बेटे सम्भाजी ने एक ब्राह्मण की लड़की पर कुदृष्टि डाली। शिवाजी को जब खबर मिली तो अपने प्यारे पुत्र को भी कैद कर दिया और उस पर कड़ा पहरा बैठा दिया था। इसीसे नाराज़ हो नादान संभाजी दिलेर खां से मिल गया था। ऐसे आत्मसंयमी वीर को 'कुत्ता' कहना अपने कलुषित हृदय का परिचय देना मात्र है। छत्रपति शिवाजी यवनों के अत्याचारों के शत्रु तो थे, पर उनके धर्म की निन्दा नहीं करते थे। उनकी आज्ञा थी कि कोई आदमी किसी मसजिद को नुकसान न पहुँचाये और न दीन-इस्लाम की ही हँसी उड़ाये। लूट के समय वे गरीबों और किसानों की रक्षा का ध्यान रखते थे। अपने आदमियों से सदा प्रेम का बर्त्ताव करते थे। कड़े से कड़े हृदय के शत्रु को वश करने के कार्य में वे बड़े ही दक्ष थे। गौ और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए तो उनका अवतार ही हुआ था।

समाप्त।